* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये
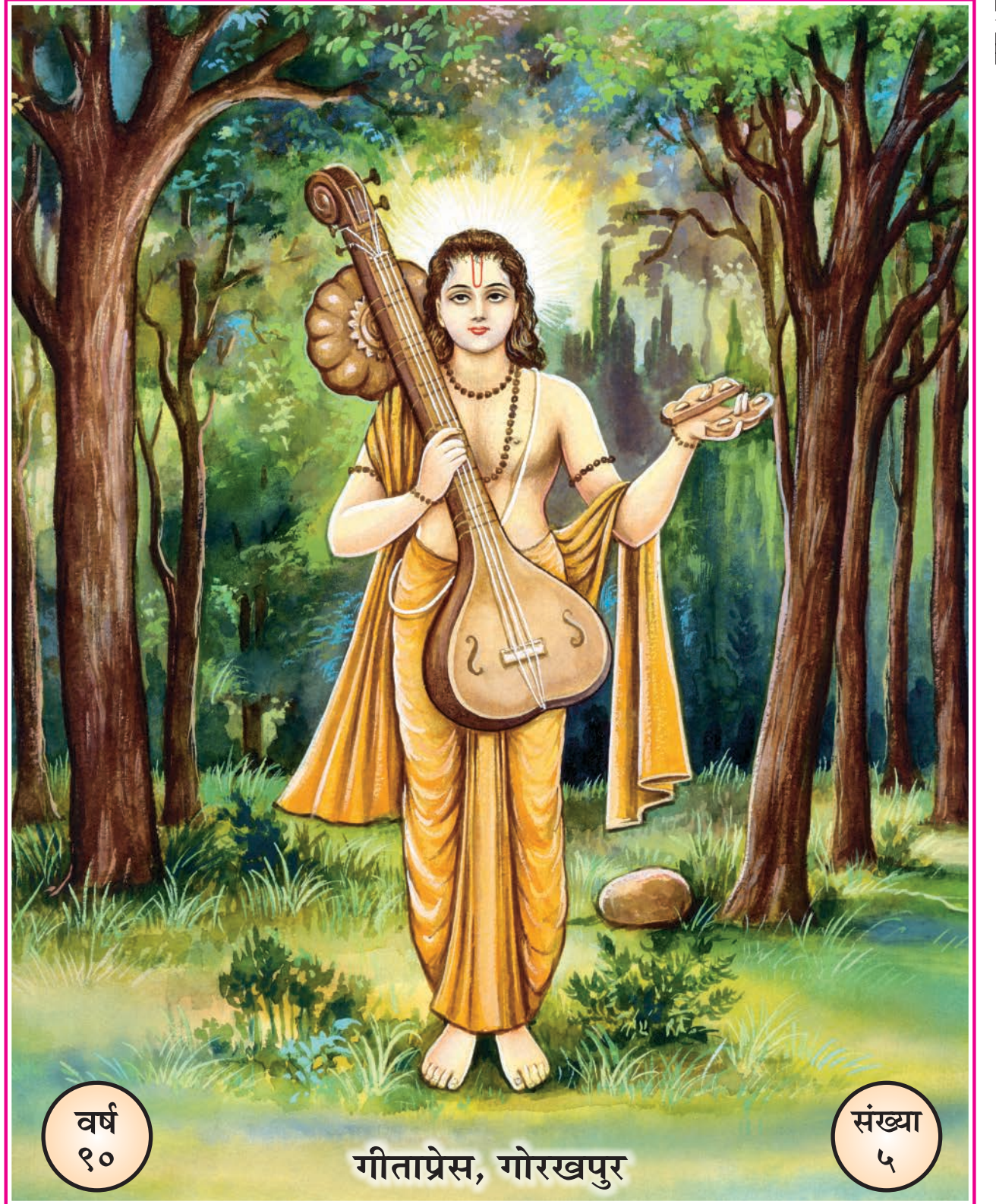
देवर्षि नारद

यशोदा मैयाका वात्सल्य-भरा शासन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९०

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, मई २०१६ ई०

संख्या ५

पूर्ण संख्या १०७४

मैयाकी सीख

भूषन-बसन सजाय सबिधि मैया मुरली कर दीनी। कमलनैन ने कर्‌यौ कलेवा, चलिबै की मन कीनी॥
मैया कह्यौ—'लाल मेरे तुम बहुत दूर जिन जइयौ। साँढ साँप बीछिनि तें लाला दूर डरत ही रहियौ'॥
सूधे-से हामी भर, तुरतहि आँगन-बाहर भागे। कारौ नाग देखि, तहँ, तातें करन अचगरी लागे॥
पाछे-पाछे आय रही ही मैया नेह भरानी। बिषधर भुजँग निकट लाला कौं देखत ही डरपानी॥
दौरि हटकि धीरे तें नेह भरे मन लगी डरावन। कोमल अँगुरिन पकरि कान दहिनौ लागी धमकावन॥
अचरज भरे डरे मन लाला अपराधी-से ठाढ़े। मैया च्यौं निरदोष मोय डरपावति सोचत गाढ़े॥
लोकपाल काँपत जाके डर अखिल भुवनके स्वामी। डरपत लीला करत स्वयं वे भक्त-प्रेम-अनुगामी॥
वत्सलता परिपूरित मैया-हिय कैसो सुचि पावन। देखत फन उठाय फनि निज लीला सुललित मनभावन॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, मई २०१६ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹२००
सजिल्द ₹२२०

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — **वार्षिक** US$ 45 (₹ 2700), **पंचवर्षीय** US$ 225 (₹13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹१०००
सजिल्द ₹११००

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु- gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—श्रीभगवान् परम आनन्द और परम शान्तिके समुद्र हैं। उन श्रीभगवान्के साथ तुम्हारा सम्बन्ध जितना ही बढ़ता जायगा, उतना ही आनन्द और शान्ति भी तुम्हारे अन्दर बढ़ते जायँगे। फिर तुम जहाँ भी जाओगे, आनन्द और शान्तिको साथ लेते जाओगे और तुम्हारे आनन्द तथा शान्तिसे जगत्के प्राणियोंको भी यथायोग्य आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति होगी। साथ-ही-साथ तुम भी क्रमशः अधिक-से-अधिक आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति करते जाओगे; क्योंकि तुम्हारा हृदय हर समय, हर स्थानमें उनका आकर्षण करता रहेगा।

याद रखो—तुम्हारे हृदयका द्वार जिसके लिये खुला होता है, तुम्हें वही वस्तु मिलती है और जो वस्तु अन्दर होती है, उसीको अधिक पानेके लिये हृदयका द्वार भी खुला रहता है। तुम यदि आनन्द और शान्ति चाहते हो तो आनन्द और शान्तिके सागर भगवान्से सम्बन्ध जोड़ो, तुम्हारे हृदयमें आनन्द और शान्ति आयेगी और ज्यों-ज्यों वह जगत्में फैलेगी, त्यों-ही-त्यों तुम्हारे अन्दर भी बढ़ती जायगी। तुम यदि भगवान्के सम्बन्धको भूलकर शोक और अशान्तिसे भरे विषय-वैभवसे सम्बन्ध जोड़ोगे तो तुम्हें आनन्द और शान्तिके बदले शोक और अशान्तिकी प्राप्ति होगी। फिर ज्यों-ज्यों तुम्हारा विषय-सम्बन्ध बढ़ता जायगा, त्यों-ही-त्यों शोक और अशान्ति भी बढ़ते जायँगे। फिर तुम जहाँ जाओगे, शोक और अशान्ति भी तुम्हारे साथ जायँगे और जगत्के प्राणियोंमें फैलकर बदलेमें तुम्हारे शोक और अशान्तिको और भी बढ़ा देंगे। तुम्हारे हृदयका दरवाजा आनन्द और शान्तिके लिये बन्द हो जायगा और तुम शोक तथा अशान्तिसे सन जाओगे। फिर जगत्की ऊँची-से-ऊँची किसी स्थितिमें भी तुम्हें आनन्द और शान्तिके यथार्थ दर्शन नहीं होंगे। इसलिये परम शान्ति और परमानन्दमय भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़ लो; फिर तुम जहाँ भी रहोगे—वहीं शान्ति और आनन्दको आकर्षित कर सकोगे और दूसरोंमें वितरण भी कर सकोगे।

याद रखो—उन मनुष्योंका संग करो, अधिक-से-अधिक समय उनके साथ रहने और उनके निकट होकर उनकी सेवा करनेमें बिताओ, जिनका हृदय परम शान्ति और परम आनन्दके समुद्र भगवान्में निमग्न है। उनके संगसे—अविरत संगसे तुम्हारे हृदयका भी भगवान्के साथ सम्बन्ध जुड़ जायगा। फिर तुम्हारे हृदयके द्वार भी परम आनन्द और परम शान्तिके लिये खुल जायँगे। ऐसे महापुरुष जगत्में सर्वत्र शान्ति और आनन्दका प्रवाह ही बहाया करते हैं; जहाँ शोक, अशान्ति, विषाद और भय होता है, वहाँ यदि उनकी हृदयस्थ शान्ति और आनन्दकी किरणें पहुँच जाती हैं तो वे शोक, अशान्ति आदिके अन्धकारका नाश करके आनन्द और शान्तिकी अत्युज्ज्वल चाँदनी फैला देती हैं।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

देवर्षि नारद

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥

(श्रीमद्भा० १।६।३९)

श्रीसूतजी शौनकादि ऋषियोंसे देवर्षि नारदकी महिमा बताते हुए कहते हैं—अहो! ये देवर्षि नारद धन्य हैं; क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवान्‌की कीर्तिको अपनी वीणापर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-साथ इस त्रितापतप्त जगत्‌को भी आनन्दित करते रहते हैं।

भगवद्भक्तिके प्रधान आचार्य परम भागवत देवर्षि नारदजीका उदात्त चरित जगत्‌के लिये परम आदर्श है। ये ज्ञानके स्वरूप, भक्तिके सागर, प्रेमके भण्डार, दयाके निधान, आनन्दकी राशि, सदाचारके आधार, सर्वभूतोंके सुहृद् तथा समस्त सद्‌गुणोंकी खान हैं। ये भागवत-धर्मके आचार्य, भक्तिशास्त्रके प्रवर्तक एवं स्वयं परम भागवत हैं।

देवर्षि नारद पहले गन्धर्व थे। एक बार ब्रह्माजीकी सभामें सभी देवता और गन्धर्व भगवन्नामका संकीर्तन करनेके लिये आये। नारदजी भी अपनी स्त्रियोंके साथ उस सभामें गये। भगवान्‌के संकीर्तनमें विनोद करते हुए देखकर ब्रह्माजीने इन्हें शूद्र होनेका शाप दे दिया। उस शापके प्रभावसे नारदजीका जन्म एक शूद्रकुलमें हुआ। जन्म लेनेके बाद ही इनके पिताकी मृत्यु हो गयी। इनकी माता दासीका कार्य करके इनका भरण-पोषण करने लगी। एक दिन इनके गाँवमें कुछ महात्मा आये और चातुर्मास्य बितानेके लिये वहीं ठहर गये। नारदजी बचपनसे ही अत्यन्त सुशील थे। वे खेलकूद छोड़कर उन साधुओं के पास ही बैठे रहते थे और उनकी छोटी-से-छोटी सेवा भी बड़े मनसे करते थे। सन्त-सभामें जब भगवत्कथा होती थी तो ये तन्मय होकर सुना करते थे। सन्तलोग इन्हें अपना बचा हुआ भोजन खानेके लिये देते थे।

साधुसेवा और सत्संग अमोघ फल प्रदान करनेवाला होता है। उसके प्रभावसे नारदजीका हृदय पवित्र हो गया और इनके समस्त पाप धुल गये। जाते समय महात्माओंने प्रसन्न होकर इन्हें भगवन्नामका जप एवं भगवान्‌के स्वरूपके ध्यानका उपदेश दिया। एक दिन साँपके काटनेसे इनकी माताजी भी इस संसारसे चल बसीं। अब नारदजी इस संसारमें अकेले रह गये। उस समय इनकी अवस्था मात्र पाँच वर्षकी थी। माताके वियोगको भी भगवान्‌का परम अनुग्रह मानकर ये अनाथोंके नाथ दीनानाथका भजन करनेके लिये चल पड़े। एक दिन जब नारदजी वनमें बैठकर भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान कर रहे थे, अचानक इनके हृदयमें भगवान् प्रकट हो गये और थोड़ी देरतक अपने दिव्यस्वरूपकी झलक दिखाकर अन्तर्धान हो गये। भगवान्‌का दुबारा दर्शन करनेके लिये नारदजीके मनमें परम व्याकुलता पैदा हो गयी। वे बार-बार अपने मनको समेटकर भगवान्‌के ध्यानका प्रयास करने लगे, किंतु सफल नहीं हुए। उसी समय आकाशवाणी हुई—'हे दासीपुत्र! अब इस जन्ममें फिर तुम्हें मेरा दर्शन नहीं होगा। अगले जन्ममें तुम मेरे पार्षदरूपमें मुझे पुनः प्राप्त करोगे।'

समय आनेपर नारदजीका पांचभौतिक शरीर छूट गया और कल्पके अन्तमें ये ब्रह्माजीके मानस पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। देवर्षि नारद भगवान्‌के भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। ये भगवान्‌की भक्ति और माहात्म्यके विस्तारके लिये अपनी वीणाकी मधुर तानपर भगवद्‌गुणोंका गान करते हुए निरन्तर विचरण किया करते हैं। इन्हें भगवान्‌का मन कहा गया है। इनके द्वारा प्रणीत भक्तिसूत्रमें भक्तिकी बड़ी ही सुन्दर व्याख्या है। अब भी ये प्रत्यक्षरूपसे भक्तोंकी सहायता करते रहते हैं। भक्त प्रह्लाद, भक्त अम्बरीष, ध्रुव आदि भक्तोंको उपदेश देकर इन्होंने ही भक्तिमार्गमें प्रवृत्त किया। इनकी समस्त लोकोंमें अबाधित गति है। इनका मंगलमय जीवन संसारके मंगलके लिये ही है। ये ज्ञानके स्वरूप, विद्याके भण्डार, आनन्दके सागर तथा सब भूतोंके अकारण प्रेमी और विश्वके सहज हितकारी हैं।

श्रीनारदजी व्यास, वाल्मीकि तथा महाज्ञानी शुकदेवजीके गुरु रहे हैं। श्रीमद्भागवत तथा श्रीवाल्मीकि-रामायण-जैसे उदात्त ग्रन्थ देवर्षि नारदकी कृपासे ही हमें प्राप्त हो सके हैं।

भगवन्नाम-महिमा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान‍्के नामकी महिमा अपार है, अपरिमित है। वाणीके द्वारा उसकी महिमा स्वयं भगवान् भी नहीं बतला सकते, तब दूसरा तो बतलायेगा ही क्या? जैसे खेतमें बीज किसी भी प्रकारसे बोया जाय, उससे लाभ-ही-लाभ है, इसी प्रकार भगवान‍्के नामका जप किसी भी प्रकारसे किया जाय, उससे लाभ-ही-लाभ है। श्रीमद्भागवतमें बतलाया है—

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥

(६।२।१४-१५)

'महात्मा पुरुष यह बात जानते हैं कि चाहे पुत्रादिके संकेतसे हो, हँसीसे हो, स्तोभ (गीतके आलापके रूप)-से हो और अवहेलना या अवज्ञासे हो, वैकुण्ठभगवान‍्का नामोच्चारण सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है। जो मनुष्य ऊँचे स्थानसे गिरते समय, मार्गमें पैर फिसल जानेपर, अंग-भंग हो जानेपर, सर्पादिद्वारा डँसे जानेपर, ज्वरादिसे संतप्त होनेपर अथवा युद्धादिमें घायल होनेपर विवश होकर भी 'हरि' (इतना ही) कहता है, वह नरकादि किसी भी यातनाको नहीं प्राप्त होता।'

फिर यदि नामका जप मनसे किया जाय तो उसकी बात ही क्या है? क्योंकि मानसिक जपकी विशेष महिमा बतलायी गयी है। श्रीमनुजी कहते हैं—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥

(२।८५)

'विधियज्ञ (होम)-से उच्चारण करके किया हुआ जपयज्ञ दस गुना श्रेष्ठ है और उपांशु सौ गुना श्रेष्ठ है तथा मानस-जप हजार गुना श्रेष्ठ है।'

नामकी महिमा सभी युगोंमें है, किंतु इस कलिकालमें तो इसकी महिमा और भी विशेष है। श्रीवेदव्यासजीने कहा है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥

(विष्णुपुराण ६।२।१७)

'सत्ययुगमें ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञ करनेसे, द्वापरमें पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें केवल श्रीकेशवके कीर्तनसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है।'

नामका जप यदि ध्यानसहित किया जाय तो सारे विघ्नोंका नाश होकर आत्माका उद्धार हो जाता है। योगदर्शनमें कहा है—

तस्य वाचकः प्रणवः। (१।२७)

'उस परमात्माका वाचक (नाम) ओंकार है।'

तज्जपस्तदर्थभावनम्। (१।२८)

'उसके नामका जप और उसके अर्थकी भावना यानी स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये।'

'**ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।**' (१।२९)

'ऐसा करनेसे सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश और परमात्माकी प्राप्ति भी होती है।'

गीतामें भगवान् कहते हैं—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(८।१३)

'जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त हो जाता है।'

श्रीभगवान‍्के अनेक नाम हैं। उनमेंसे किसी भी नामका जप किसी भी कालमें, किसी भी निमित्तसे कैसे भी क्यों न किया जाय, वह परम कल्याण करनेवाला है। यदि भगवान‍्के नामका जप गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, अर्थ और भावको समझकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निष्कामभावसे किया जाय, तब तो तत्काल ही परमात्माकी

प्राप्ति हो जाती है; क्योंकि भगवान्‌के भजनके प्रभावसे साधकको भगवान्‌के स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, जिससे भगवान्‌की प्राप्ति होती है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(१०।१०)

'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।'

श्रीभगवान् बाहर-भीतर सब जगह व्यापक हैं, परिपूर्ण हैं; किंतु अज्ञानके कारण नहीं दीखते। वह अज्ञान भी भगवान्‌के नाम-जपके प्रभावसे नष्ट हो जाता है। श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

भगवन्नाम-जपके प्रभावसे सारे पापोंका नाश होकर पापी भी परमगतिको प्राप्त हो जाता है। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

जबहिं नाम हिरदै धर्‍यो भयो पाप को नास।
मानो चिनगी अग्नि की परी पुरानी घास॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ॥

फिर धर्मात्माकी तो बात ही क्या है? द्रौपदी एवं गजेन्द्रके जैसा प्रेम होनेपर तो सकाम भजनसे भी भगवान् मिल सकते हैं, फिर निष्काम भजनसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है। जो मनुष्य हर समय भगवान्‌के नामका स्मरण करता है, उसके तो भगवान् अधीन ही हो जाते हैं। श्रीगोस्वामीजीने कहा है—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्‌के सभी नाम समान हैं। चाहे जिस नामका जप किया जाय, सभी कल्याण करनेवाले हैं। जैसे पानी, जल, नीर, अप्, वाटर आदि जलके ही विभिन्न नाम हैं और उन सबका एक ही अर्थ है। इसी प्रकार भगवान्‌के ॐ, हरि, वासुदेव, राम, कृष्ण, गोविन्द, नारायण, शिव, महादेव आदि सभी नामोंका एक ही अर्थ है। अत: किसी भी नामका जप करनेपर भगवत्प्राप्ति हो सकती है। संसारमें भगवन्नाम-जपके समान कोई भी साधन नहीं है। ज्ञान, ध्यान, जप, तप, योग आदि सभी साधन नाम-जपकी अपेक्षा कठिन हैं। अत: इन सब बातोंको सोचकर मनुष्यको नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नामका जप और कीर्तन करना चाहिये। भगवान् स्वयं गीतामें कहते हैं—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।'

(९।३३)

'इसलिये तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्य-शरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।'

वस्तुत: संसारमें भगवान्‌के समान कोई भी पदार्थ नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भगवान्‌के एक अंशमें है। जो इस तत्त्वको जान लेता है, वह एक क्षण भी भगवान्‌को नहीं भूल सकता। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद् भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(१५।१९)

'हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।'

इसलिये हमलोगोंको उचित है कि भगवान्‌के शरण होकर भगवन्नामके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, अर्थ और भावको समझकर श्रद्धाभक्तिपूर्वक निष्काम प्रेमभावसे, ध्यानसहित, गुप्तरूपसे भगवान्‌के नामका मानसिक जप नित्य-निरन्तर करें।

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

जिसने 'हरि'—ये दो अक्षर एक बार भी उच्चारण कर लिये, उसने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये परिकर बाँध लिया, फेंट कस ली।

कर्तव्यपालन भी आवश्यक

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

ब्रह्मतत्त्व-निरूपण परम कल्याणकारक है, किंतु परिस्थितिका सामना करना भी आवश्यक हो जाता है। अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा भी परिस्थितिके अनुसार अपने निर्गुण, निराकार, अलक्ष्य, अग्राह्य, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य रूपसे सगुण-साकार रूपमें अवतरित होकर जगत्का कल्याण करते हैं। जब सभी अनर्थोंके मूलभूत अधर्मकी निवृत्ति, परमकल्याणमूल धर्मका संस्थापन, प्राणियोंमें सद्भावना एवं विश्वकल्याणके लिये ही भगवान् नानाविध अवतार धारण करते हैं, तब भगवद्भक्तोंका भी यह परम कर्तव्य है कि अपने परमाराध्य भगवान्का अनुसरण करें। जिस देशमें, जिस जातिमें जन्म हो, उसके प्रति भी जीवका कुछ कर्तव्य होता है। खाना, पीना, सोना, रोना, सन्तान उत्पन्न करना तो पशु भी जानता है, पर मानव-जीवन केवल इतने ही भरके लिये नहीं है। उसका जन्म तो धर्मकी जय, अधर्मकी निवृत्ति एवं भगवत्प्राप्तिके लिये होता है। जो अपने वर्णाश्रमानुसार कर्तव्य कर्मका परित्यागकर केवल रामनाम रटा करता है, वह वस्तुतः भगवान्का प्रेमी नहीं, अपितु भगवान्का द्वेषी है; क्योंकि भगवान्का जन्म ही **'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥'** उक्तिके अनुसार अधर्मकी निवृत्ति, धर्मकी संस्थापना, सज्जनोंके परित्राण एवं असुरोंके आसुरी भावका विनाश करनेके लिये ही होता है। कहा भी है—**'अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः। ते हरेर्द्वेषिणः पापा धर्मार्थं जन्म यद्धरेः।'** भला भगवान्का अवतार ही जिस अपने परमप्रिय सनातन वैदिक धर्मके संस्थापनके लिये होता है, उस धर्मकी रक्षाके कार्यमें जो हाथ न बँटाये तो वह फिर भगवान्का भक्त कैसे कहला सकता है? कल्पना कीजिये कि किसीको अपने मित्रका तार मिलता है कि 'मैं कल दो बजेकी गाड़ीसे आऊँगा, स्टेशनपर किसीको सुविधाके लिये भेज देना।' यदि इस तारको पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कि मेरे मित्रका तार आया, आज मेरे मित्रका तार आया—इस प्रकार रट लगाकर नाचने लगे, तारको सोनेकी चौकीपर रखकर उसकी गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजा करे, बाजे बजवाये और उत्सव मनाये, किंतु दो बजे मित्रको लेनेके लिये स्टेशनपर जाना है अथवा किसीको भेजना है, इस बातको भूल जाय और मित्र ठीक समयपर आकर किसी प्रकारकी सुविधाको न पाकर परेशान भटकता हुआ उसके यहाँ पहुँचे और उसके ताण्डव नृत्यसहित उत्सवको देखे तो क्या ऐसे मित्रको कोई अपना प्रेमी या भक्त कहेगा? ठीक, इसी प्रकार हमें मंगलमय भगवान्का संकीर्तन तो करना ही चाहिये, किंतु वेदशास्त्रस्वरूप भगवदाज्ञाओंका पालन भी अवश्य करना चाहिये। देशकी रक्षाके लिये, धर्मकी रक्षाके लिये, सभ्यता एवं संस्कृतिकी रक्षाके लिये मर-मिटनेमें तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ ही नहीं, अपितु संन्यासीका भी यह परम कर्तव्य है कि वह अपने देश, धर्म, जाति तथा सभ्यता-संस्कृतिकी रक्षाके लिये उचित प्रयत्न करे। 'स्कन्दपुराण' का वाक्य है कि अत्यन्त प्रयत्न करके भी इस वैदिक मार्गका संस्थापन करो। इसके सुस्थिर हो जानेपर ही आधि-व्याधि, शोक-सन्ताप मिटेगा, दीनता, दरिद्रता, परतन्त्रता भी मिटेगी और सुख, समृद्धि, शान्ति, स्वाराज्य, वैराज्य, साम्राज्य, अनन्त धन-धान्यकी प्राप्ति होगी—**'स्थापयध्वमिमं मार्गं प्रयत्नेनापि भो द्विजाः। स्थापिते वैदिके मार्गे सकलं सुस्थिरं भवेत्॥'** विपत्तियोंका कोई आवाहन नहीं करता, कोई दुःख,

दरिद्रता, दीनता, हीनताको बुलाना नहीं चाहता। परंतु जब उनके कारण (अधर्म)-को पैदा किया जाता है, तब फलरूप सारी विपत्तियाँ भी भोगनी ही पड़ेंगी। इसी तरह जब धर्मानुष्ठानपर आरूढ़ होंगे, तब जैसे बरसाती नदियाँ तीव्र वेग एवं विशेष जलराशिके साथ समुद्रकी ओर स्वेच्छापूर्वक बढ़ती हैं, उसी तरह सारे सुख, सम्पत्ति, धर्मानुष्ठान करनेवालोंके पास अवश्यमेव आयेंगे—'***जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥ तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥***'

'**यश्च स्थापयितुं शक्तो नैव कुर्याद्विमोहितः। तस्य हन्ता न पापीयानिति वेदान्तनिर्णयः**' अर्थात् जो इस वैदिक धर्ममार्गकी स्थापनामें समर्थ होता हुआ भी प्रयत्न नहीं करता, उसके मारनेमें कोई पाप नहीं होता, यह वेदका निर्णीत सिद्धान्त है। वैसे तो यह अर्थवाद ही है, किंतु अर्थवाद भी गुणवाद, अनुवाद नहीं, भूतार्थवाद है। यह सर्वथा ठीक है कि अपने समक्ष माता-पिता, गुरुजनोंकी हत्या, उनका अपमान, अत्याचारियोंद्वारा उनके ऊपर अत्याचार, व्यभिचारियोंद्वारा माँ, बहन, बेटीका व्यभिचार देखकर भी क्षमा और दयाकी डींग हाँकना केवल कायरता, कृपणता है। धर्मके अनुकूल क्षमा और दया पुण्य हैं, पर धर्मके प्रतिकूल वह पाप है। वैसे तो मृत्युसे बढ़कर कोई कष्ट तथा स्वर्गके राज्यसे बढ़कर कोई सुख नहीं, किंतु अर्जुन सबसे बड़े सुख त्रैलोक्यराज्यका परित्याग तथा सबसे बड़े दुःख मृत्युको दयापरवश होकर सहन करनेके लिये तैयार था—'**यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः। धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥**' यदि धृतराष्ट्रके पुत्र शस्त्र हाथमें लेकर मुझ अशस्त्रको युद्धमें मार दें, तो इसमें मेरा अधिक कल्याण है। '**अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते**' परंतु भगवान्‌ने हमें पाप ही बतलाते हुए कहा—'अर्जुन! तुमको इस विषम कालमें यह अस्वर्ग्य, अनार्यसेवित, अकीर्तिकर पाप कहाँसे प्राप्त हुआ?' '**कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्। अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥**' केवल भगवान्‌ने ही नहीं कहा, किंतु अर्जुनने भी कार्पण्यदोष स्वीकार किया—'**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।**' कृपणताका अर्थ कई आचार्योंने कई प्रकारसे किया है। किसी आचार्यका कहना है कि जो थोड़ा-सा भी व्यय सहन नहीं कर सकता, वह कृपण है—'**यः स्वल्पामपि स्वात्मनो वित्तक्षतिं न क्षमते स कृपणः।**' अहर्निश आजतक लाखों शरीर अन्याय, अत्याचार, दुराचार, दुर्विचार, पापाचार, व्यभिचारमें खत्म हुए होंगे, किंतु एक शरीरको जब सदाचार, सद्विचार, सद्धर्म, सत्कर्म, सत्संगमें लगानेके लिये कहा जाय तो उत्तर देते हैं कि 'अजी, मरनेकी भी फुर्सत नहीं, यह उनका थोड़ा-सा उचित व्यय सहन न करना ही कृपणता है।' श्रुतिने भी बतलाया है—गार्गि, जो इस अक्षर, अनन्त, अखण्ड, एकरस, अद्वैत परमात्माको बिना जाने हुए इस लोकसे चला जाता है, वह कृपण है—'**यो ह वा गार्गि एतदक्षरमविदित्वा अस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः।**' ऐसी कृपणता अहंता, ममताको आगे करके हुआ करती है। यदि साधारण स्त्रियाँ यह सोचती हैं कि हमारे पति-पुत्र धर्म, देश, राष्ट्रकी रक्षाके लिये प्राणको हथेलीपर रखकर, जीवनको संकटमें डालकर रणक्षेत्रमें आगे बढ़ें, इसकी अपेक्षा भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करना अच्छा है, हम कभी भी अपने पति-पुत्रको रणमें न भेजेंगी, तो अहंता-ममताके वशीभूत होकर इस तरह पति-पुत्रको बचाना परम अधर्म है। भरतपुत्र पुष्कल महाराजकी धर्मपत्नीने भगवान् रामचन्द्रके अश्वमेधयज्ञमें अश्वरक्षाके लिये जाते हुए पुष्कलसे यह कहा था कि 'पतिदेव! मैं वीरपत्नी हूँ, आप रणक्षेत्रमें प्राणोंको हथेलीपर रखकर जीवनको खतरेमें

डालकर आगे बढ़ना, कभी मुझ वीर-पत्नीको लजाना नहीं। कहीं मेरी देवरानी, जेठानी मेरी हँसी न करें।'

लोग कहा करते हैं—गीतामें अर्जुनके इस प्रश्नका कि 'वीरोंके मर जानेसे उनकी स्त्रियाँ दूषित हो जायँगी, वर्णसंकरी सृष्टि हो जायगी।' भगवान्ने कुछ उत्तर नहीं दिया। कुछ तो कहते हैं कि भगवान्ने इस बातको मान लिया कि कलियुगमें यह होना ही चाहिये। किंतु बाल-की-खाल निकालनेवाला अर्जुन बिना उत्तर पाये कब चुप बैठा रह सकता था। वह तो भगवान्के इस कथनपर भी कि मैं एक अंशसे समस्त संसारको व्याप्त कर रहा हूँ, मेरी विभूतियोंका अन्त नहीं है। वह चुप न बैठा और कहने लगा— भगवन्! आप जो कुछ कहते हैं, सब ठीक है, ऋषि लोग भी आपको ऐसा बतलाते हैं, परंतु भगवन्! यदि सम्भव हो तो मैं आपके उस रूपको देखना चाहता हूँ—'**द्रष्टुमिच्छामि ते रूपम्**' और अन्तमें उस रूपको देखकर ही माना। वह अर्जुन बिना उत्तर पाये, इतनी परिस्थितिको बिना सुलझाये आगे कैसे चल सकता था? भगवान्ने तो पहले ही श्लोकमें इसका उत्तर दे दिया कि हे अर्जुन! तू बुद्धिमान् पण्डितों-जैसी बात करता है और जिनके लिये शोक नहीं करना चाहिये, उनके लिये शोक करता है— '**अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥**' तुझे अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये और यह न सोचना चाहिये कि स्त्रियाँ विधवा होकर वर्णसंकर पैदा करेंगी। एक सिपाही किसी चौराहेपर पहरा दे रहा है। वहाँसे बीस कदमपर कोई भयंकर काण्ड होने लगता है। उस समय भले ही साधारण पुरुषोंकी दृष्टिमें उस चौराहेसे हटकर उस बीस कदमपर होनेवाले काण्डको सुलझाना उस सिपाहीका कर्तव्य हो, परंतु बुद्धिमान् लोग इस बातको कभी स्वीकार न करेंगे। उनका तो यही कहना रहेगा कि भले ही बीस कदमपर ही ऐसा हो, परंतु चौराहेपर से उस सिपाहीको कभी हटना नहीं चाहिये। यदि वह वहाँसे चला जाता है और इतनेमें ही उस चौराहेपर मोटर, ताँगा, साईकिलकी दुर्घटना हो जाती है तो उसकी जिम्मेदारी किसपर रहेगी? बूढ़ी माँ, बूढ़े पिता, युवती स्त्री तथा छोटे-छोटे दुधमुँहे बच्चेवाला कोई हत्यारा जजके सामने आता है। भले ही साधारण लोगोंकी दृष्टिमें उसको फाँसी देना सारे कुटुम्बको नष्ट कर देना होगा, परंतु जजका यही कर्तव्य है कि वह और किसी भी परिस्थितिका विचार न करते हुए उसको उचित दण्ड दे। सारांश यह कि सबको अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये।

अर्जुन अपने समयका गण्यमान्य सम्मानित आदर्श व्यक्ति था। अतः भगवान्ने पहले श्लोकसे ही उत्तर दिया कि अर्जुन! यदि तुम अपने धर्मसे विमुख हो जाओगे तो विधवाएँ भी विमुख हो सकती हैं; क्योंकि वे विचारेंगी कि हमारे यहाँका गण्यमान्य अर्जुन ही यदि अपने धर्मसे विमुख हो गया तो हम अपने धर्मका पालन क्यों करें—'**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।**' जिसके घरकी माँ, बहन, बेटियाँ यह देखेंगी कि हमारे भाई, पिता, पुत्र अपने धर्म-कर्मकी रक्षाके लिये बलिवेदीपर प्राणोंको न्योछावर करनेको तैयार हैं तो क्या वे कभी व्यभिचारिणी हो सकती हैं? आज हमारा धर्म, हमारे शास्त्र, हमारी संस्कृति खतरेमें हैं। भगवान्का भजन तो हर समय करना ही चाहिये। वह तो हमारा सहारा है, पर साथ ही कर्तव्यविमुख कदापि न होना चाहिये। '**मामनुस्मर युध्य च**' यही भगवान्का आदेश है। इस समय चुप बैठना कायरता है। हमें दृढ़-संकल्प होकर कर्तव्यपालन करना चाहिये। हमारे प्राण चले जायँ, भले ही हम सफल न हों, परंतु सर्व पापोंसे विमुक्त होकर मोक्ष अवश्य प्राप्त होगा '**यः स्थापयितुमुद्युक्तः श्रद्धयैवाक्षमोऽपि सन्। सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात्॥**'

भजन कैसे करें ?

[गताङ्क ४ पृ० सं० १२ से आगे]

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक होता है—'शब्दजाल'। महाभारतयुद्धमें भीमसेनने अश्वत्थामा नामक हाथीको मार दिया। फिर जाकर युधिष्ठिरसे बोले कि आप कह दीजिये कि अश्वत्थामा मर गया, तब द्रोणके हाथसे हथियार गिर पड़ेंगे और उसी अवस्थामें उन्हें मारा जा सकता है। धर्मराज बहुत असमंजसमें पड़ गये, लेकिन अन्ततः किसी प्रकार दब गये। उन्होंने कह दिया—'**अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो**'—अश्वत्थामा मारा गया आदमी या हाथी। बादमें हाथी बोले, तबतक श्रीकृष्णने शंख बजा दिया और वह शब्द सुनायी नहीं दिया। अश्वत्थामा मारा गया—यह छल हो गया। शब्द-छलसे अगर हम किसीको वही शब्द कह देते हैं और हमारे मनमें समझानेकी बात कोई दूसरी रहती है तो वह झूठ है।

अतएव उद्वेगकारी वचन न बोले, सच बोले और सच भी मधुर शब्दोंमें कहे। लोग कहते हैं गर्वसे कि मैं सच बोलता हूँ, चाहे किसीको अच्छी लगे या खारी लगे। परंतु कोई उनसे वैसे ही बोले तब। यह विचारणीय है। इसलिये वाणीको बोलना चाहिये अमृतमें घोलकर—'**सत्यं प्रियहितं च यत्**'।

बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥

(रा०च०मा० ७। ३९। ८)

मोर बड़ा मीठा बोलता है और साँप भी खा जाता है। ऊपरसे मीठा बोलना ही नहीं, हृदय भी मधुर हो और जबान भी मधुर हो। मीठी बोलीका अर्थ क्या है? जिसमें हितकी भावना भरी हो।

इसलिये दूसरेके मनमें उद्वेग करनेवाली जबान बोलना पाप, झूठ बोलना पाप, अप्रिय बोलना पाप, दूसरेके अहितकी बात बोलना पाप और व्यर्थ बोलना पाप है। इन पापोंसे जबानको बचाकर क्या करें? सबमें भगवान् हैं—यह समझकर सबका हित करनेकी इच्छासे सत्यप्रिय बोले और जब समय मिले तो जीभके द्वारा भगवान्का नाम लेता रहे।

'स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥'

(गीता १७। १५)

यह वाणीका सदुपयोग है।

अब मनकी बात करें। मनसे भी पाँच पाप होते हैं। हमने ऐसे आदमी देखे हैं, जो कहते हैं—'हम तो बहुत दुखी हैं। सारा संसार हमारा वैरी है। हमारे भाग्यमें तो सुख लिखा ही नहीं है। रात-दिन रोते रहते हैं। हमें तो दुःख-ही-दुःख है।' चाहे हो नहीं, बिना हुए ही दुःख उपजा लेते हैं। यह विषाद—यह मनका पाप है। उनके मनमें निरन्तर आता रहे कि इसको कैसे मार दें, इसके घरमें कैसे आग लग जाय, इसका बेटा कैसे मर जाय, यह बीमार हो जाय तो बहुत अच्छा, इसका दीवाला निकल जाय तो बहुत अच्छा, इसके बेटेको बीमारी हो जाय, उसकी नौकरी छूट जाय तो बहुत अच्छा। यह क्रूरता है। क्रूर विचार मनके पाप हैं। क्रूरता पाप, विषाद पाप, व्यर्थ चिन्तन—बिना मतलब जगत्की बातोंको रात-दिन मनमें सोचते रहना, यह पाप है। चौथा पाप है मनका वशमें न रहना और पाँचवाँ पाप है मनमें गन्दी वासनाओंको रखना। इस सम्बन्धमें भगवान्ने कहा है—

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

(गीता १७। १६)

'**मनःप्रसादः**'—भगवान्के राज्यमें रोनेकी जगह कहाँ है? सब जगह भगवान्का मंगल-विधान कार्य कर रहा है। हँसो, निरन्तर हँसते रहो। भागलपुरमें श्रीरामसकलसिंहजी रहते थे। प्रोफेसर थे। मैं उनसे एक बार मिला। उन्होंने सारी बातें हँसनेमें कीं। वे हँसनेकी भाषामें बात करते थे। केवल हँसते और हँसाते। यह है—'**मनःप्रसादः।**' मनमें नित्य प्रसन्न रहे। मनको सौम्य रखे, शीलवान् रखे, ठण्डा रखे। मनमें दया भरी रखे। मन मौन रहे। मनमें भगवान्का मनन करे, जगत्का मनन छोड़ दे। मन निगृहीत रहे, मन वशमें रहे और

मनमें शुद्ध भावोंको भरता रहे। ये पाँच मनके पुण्य हैं और ऐसे मनको क्या करे? भगवान्‌के साथ जोड़े रखे।

वाणीसे भगवान्‌का नाम, मनसे भगवान्‌का चिन्तन और शरीरसे भगवान्‌की सेवा—ये तीन बातें किसीके जीवनमें आ जायँ तो उसका जीवन भजनमय हो जाय। इसको कहते हैं—भजन। हम नियमित दो घण्टे माला फेरते हैं, यह बड़ा भजन है; परंतु इससे ऊँचा वह भजन है, जब दिनभर माला फेरें। एक रामनामके आढ़तिया थे। वे बही-खाता रखते थे। वे सबके पास जाते थे और नाम-जपके लिये प्रार्थना करते थे। कोई नहीं मानता तो गाली भी बक देते। कहते, नाम नहीं जपता है? मर जायगा-मर जायगा, साथ कुछ भी नहीं जायगा। हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई—सबके पास जाते थे और कहते कि तुम जिस भगवान्‌को मानते हो, उसके लिये लिख दो कि उसे याद करेंगे। इतना नामजप करनेके लिये लिख दो। अपने बही-खातेमें लिखवाते। एक बार मैं बम्बईमें श्रीजमनालालजी बजाज और रामनामके आढ़तियाको साथ लेकर गांधीजीसे मिलने गया। वहाँ उन्होंने गांधीजीके सामने अपनी बही रख दी और बोले—महाराज! यह खाता है, इसमें रामनामके लिये हस्ताक्षर कर दीजिये। गांधीजीने कहा—यह क्या है? तब श्रीजमनालालजीने उन्हें समझाया कि ये इस प्रकार लोगोंको रामनाम लेनेको कहते हैं। गांधीजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—बड़ा मंगल कर रहे हो। बड़ा अच्छा कार्य कर रहे हो; पर मैं सही (हस्ताक्षर) नहीं करूँगा। उन्होंने पूछा—क्यों नहीं करेंगे? वे महात्मा थे, उन्हें कोई डर नहीं था, इसलिये पूछ दिया। गांधीजीने उत्तर दिया—जब मैं अफ्रीकामें था, तब नाम-जप करता था माला फेरकर, संख्या रखकर, परंतु अफ्रीकासे यहाँ लौट आनेपर मेरा यह अभ्यास है—मैं दिनभर नाम-जप करता हुआ काम करता हूँ। इसलिये मैं संख्या क्या लिखूँ? गांधीजीने यह बात मेरे सामने कही है। इतना बड़ा प्रकाण्ड कर्मठ व्यक्ति जो दिनभर कार्यमें लगा रहे, वह नाम-जप करता रहे—यह बहुत बड़ी बात है।

एक बार मैं साबरमती आश्रममें उनके पास गया। मेरे पास 'कल्याण' का अंक था। उसे लेकर उन्होंने देखा और पूछा कि इसमें नाम-जपकी अपील क्या छाप रखी है? मैंने कहा—यह अपील हम करते हैं। वे बोले—इससे कितना नाम-जप होता है? मैंने कहा—अनुमानतः दस करोड़। उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—बड़ा अच्छा करते हो। बड़ा मंगल होता है। फिर मुझसे पूछा—तुम भी करते हो या लोगोंसे करवाते ही हो? मेरे यह कहनेपर कि महात्माजी! मैं भी करता हूँ, उन्होंने तकियेके नीचेसे माला निकाली और बोले—देखो, मैं भी रातमें, अकेलेमें जप करता हूँ। वे बड़े विनोदी थे। मेरे पास तुलसीकी एक नयी माला थी। उनकी माला पुरानी थी। मैंने कहा—बापूजी! मैं यह माला लाया हूँ, ले लीजिये। वे बोले—तुम मुझे माला देने आये हो, गुरु बनने। मैंने कहा—नहीं, बापूजी! माला देने नहीं आया। आपकी माला पुरानी हो गयी थी, इसलिये कहा। उन्होंने कहा—तुम अधिक माला जपो, तब तुम्हारी माला लेंगे। मैंने कहा—अच्छी बात, करूँगा। फिर उन्होंने मुझसे माला ले ली। इस प्रकारकी भगवान्‌के नाममें उनकी रुचि थी।

जिह्वाका असली उपयोग क्या है? भगवान्‌का नाम लेना। रात-दिन जीभसे भगवान्‌का नाम जपता हुआ सब काम करे। इसमें कोई आपत्ति नहीं है। इसे सभी कर सकते हैं। यह चीज तो इतनी सीधी-सरल है और सर्वोत्तम है, इसमें तोल-मोल कुछ नहीं लगता और समय नहीं जाता। माताएँ रसोई बनाती जायँ, परोसती जायँ, जिमाती जायँ और राम-नाम बोलती जायँ, कोई बात नहीं। घरवाले नाराज होंगे तब, जब काम नहीं करेंगे। साधन करना है। काम करो भगवान्‌की सेवा मानकर, तब सभी राजी रहेंगे। कहेंगे कि यह बड़ी अच्छी है, बहुत काम करती है। झाड़ू देना, बर्तन माँजना इत्यादि सारे कार्य भगवत्सेवा मानकर करे। तनसे सेवा, मनसे स्मरण और जीभसे नाम-जप—ये तीन चीजें असली भजन हैं। दिन-रात भजन हो सकता है, सिर्फ एक जगह नहीं। जब मन्दिरमें जाय तो पूजा करे। भगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने बैठे तो उनकी षोडशोपचार, पंचोपचारसे जैसी चाहे, वैसी पूजा करे और दिनभर सारे जगत्‌के प्राणियोंमें भगवान्‌को देखकर उनकी पूजा करे—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(रा०च०मा० १।८।२)

सभीको प्रणाम करे, सबकी पूजा करे। शत्रु कोई नहीं, पराया कोई नहीं। सब हमारे भगवान्‌के, नारायणके रूप हैं। इस प्रकारसे तीनोंके द्वारा भगवान्‌की सेवा करे तो जीवन भगवद्भजनमय हो जाय। फिर उसका परिणाम क्या होगा? हमारा जीवन भजनमय नहीं है, इसलिये उस आनन्दकी उपलब्धि नहीं है, जिनका है, वे जानते हैं। भजनमय जीवन हो जानेपर भगवान्‌का सान्निध्य क्षणभरके लिये भी नहीं छूटता है। भगवान्‌का भजन करनेवालेके पास भगवान् स्वयमेव रहनेको बाध्य हो जाते हैं। उनको बुलाना नहीं पड़ता है। जिसके जीवनमें भगवान्‌का अखण्ड भजन होगा, वहाँ जीवनमें भगवान् आ जायँगे। भगवत्ता आयेगी, ऐश्वर्य आयेगा। यह भगवदीय जीवन (Divine Life) होगा। भगवदीय जीवन तब होता है, जब भगवान् जीवनमें उतर आते हैं। भगवान् कब उतरते हैं? जब जीवन भगवन्मय होता है। भगवान्‌ने कहा है—

अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥

(रा०च०मा० ५।४८।७)

जिस प्रकार लोभीके मनमें धन बसता है, उसी प्रकार मेरे हृदयमें वह संत बसता है। जैसे लोभी मनमें धनको बसाता है। असली चीज यह है कि ऊपरसे छिपाये और अन्दर बढ़ती रहे। इसीका नाम तो प्रेम है। ऊपरसे बहुत छिपाये, पता ही न लगने दे कि कहीं प्रेम भी है और अन्दरसे रस बरसता रहे। बाहरसे पता न लगने दे कि भजन करता है।

एक राजा थे। वे गुप्त भजनानन्दी थे। यह बात किसीको मालूम नहीं थी। रानी चाहती थीं कि मेरे पतिके मुखसे भी कभी 'राम' निकले। ये भी भजन करें। एक दिन राजा सोये हुए थे। सोते हुए ही राजाके मुखसे निकल गया—'राऽऽम'। रानीने सुना तो बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने बाजे बजानेका आदेश दे दिया। रातमें बाजे बजने लगे। राजाने पूछा—यह कैसी आवाज है? रानीने कहा—महाराज! आज तो आनन्द आ गया। राजाने कहा—कैसा आनन्द, बताओ तो? रानीने कहा कि आज आपके मुखसे 'राम' निकल गया। राजाने विस्मयसे कहा—निकल गया! मेरे मुखसे राम निकल गया!! फिर प्राण भी निकल जायँ। फिर प्राण भी निकल गये। राजाने प्राण त्याग दिये।

यह है—गुप्त भजन। भजनको बताया नहीं जाता। जहाँ भजनको बताया जाता है, वहाँ भगवान् नहीं बसते। उसके मनमें भगवान् नहीं बसते, वहाँ तो कुछ और चीज बसी रहती है और जहाँ भजन ऐसा हो गया कि भजनमय जीवन है, वह भगवन्मय जीवन है। उसमें भगवान् आ बसते हैं। भगवान् उसको अपने हृदयमें बसा लेते हैं। उसके बिना भगवान् रह नहीं सकते। जहाँ अखण्ड भजन है, जीवन भजनमय है, वहाँ भगवान् बिना उसके रह नहीं सकते। भगवान् उसके पास रहना पसन्द करते हैं। भगवान्‌को सुख मिलता है। यह अनुभव करके देखनेकी चीज है। भगवान्‌को सुख मिलता है और सुखके लोभसे भगवान् उसके पास रहते हैं। भगवान् बुलाते हैं। जब कोई ऐसा भजनानन्दी नहीं आता है तो भगवान् उसको बुलाते हैं। आप जानते होंगे रासपंचाध्यायीमें यह बात आयी है। गोपियाँ गयीं अथवा गोपियोंको भगवान्‌ने बुलाया? किसने पहले वंशी बजायी? वंशी बजाकर किसने प्रेरणा की? किसने उनके मनमें विचार पैदा किये, इच्छा उत्पन्न की? किसने उनके मनको आन्दोलित किया? किसने उनको खींचा—आकर्षित किया? श्रीकृष्णने खींचा। उनका नाम है—खींचनेवाला। कृष्णका अर्थ है—खींचनेवाला। कोई पापी हो तो उसके पापको खींचकर बहा दें और कोई मन रखे तो मनको खींच लें। भगवान्‌ने वंशी बजाकर उन्हें खींच लिया। रासपंचाध्यायी जो पढ़ते हैं, उन्हें सबसे पहले एक शब्दपर ध्यान देना चाहिये, वह शब्द है—'भगवान्'। फिर आगे बढ़ना चाहिये, नही तो अर्थका अनर्थ हो जायगा।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।१)

भगवान्‌ने क्या किया? भगवान्‌ने मन बनाया। इसलिये कि गोपांगनाओंको बुलाना है। क्यों? इसलिये कि उनके बिना रह नहीं सकते। क्यों नहीं रह सकते?

एक ही चीज है, वह गोपांगनाओंके पास अपना मन ही नहीं है। गोपांगनाओंके पास अपना जीवन नहीं है—

'ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।'

(श्रीमद्भा० १०। ४६। ४)

ऐसी हैं श्रीगोपांगनाएँ। अतएव भगवान्‌में तन-मन लगा दो। भगवान् आपमें आकर बस जायँगे या आपको लेकर अपने मनमें लोभीके धनकी तरह बसा लेंगे। जैसे लोभी धनको छिपाकर रखता है कि उसे कोई देख न ले, कोई छीन न ले, बढ़ता ही रहे-बढ़ता ही रहे। उसी प्रकार भगवान् चाहते हैं कि यह मेरे हृदयमें बसा रहे।

भगवान्‌ने अर्जुनके लिये अग्निसे वरदान माँगा। इन्द्रसे कहा कि यदि मुझे वरदान देना है तो यह दें कि अर्जुनमें मेरा प्रेम बढ़ता रहे। सभी भक्त वरदान माँगते हैं। महाभारतमें कथा आती है कि जब परीक्षित् गर्भमें थे तो अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया, उन्हें मारनेके लिये। तब भगवान्‌ने प्रतिज्ञा की कि यदि अर्जुनसे मेरा प्रेम अखण्ड रहा हो तो बच्चा जीवित हो जाय। क्या बात है? बच्चा जीवित हो गया। अर्जुनने कहा है कि जब मैं रथमें चलता था तो देखता था कि मेरे आगे-आगे श्रीकृष्ण चल रहे हैं। आगे कृष्ण, पीछे कृष्ण, दायें कृष्ण, बायें कृष्ण और हृदयमें कृष्ण। क्यों? एक कथा आती है कि एक बार अर्जुन सोये हुए थे। उनके रोम-रोमसे 'कृष्ण' की ध्वनि निकल रही थी। वहाँ ब्रह्माजी आये, शंकरजी आये। सभी सुनकर आनन्दोन्मत्त हो गये, नाचने लगे। इसलिये भगवान्‌ने मान लिया कि अर्जुनका जीवन भजनमय जीवन है। कर्म करें और भजनमय जीवन रहे। इसीलिये भगवान् सारथि बने; रात-दिन साथ रहे।

इसलिये भगवान्‌को साथ रखना हो तो असली भजन करे। असली भजनका अर्थ है—तनसे, मनसे और वाणीसे भगवान्‌का सेवन। [**समाप्त**]

नीतिकथा—

नम्रताके व्यवहारसे पराभव नहीं होता

एक बार राजा युधिष्ठिरने महाराज भीष्मजीसे पूछा—तात! यह बतलानेकी कृपा करें कि जब एक राजा दुर्बल शक्तिवाला हो, साधनहीन हो तो उसे पराक्रमी शत्रु राजाके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये?

भीष्मजीने कहा—भारत! मैं इस सम्बन्धमें नीतिमान् विज्ञ पुरुषोंद्वारा अपनायी गयी एक नीतिका दृष्टान्त देता हूँ, जो समुद्र और नदियोंके बीच हुआ था। ध्यानसे सुनो।

एक समयकी बात है। समुद्रने नदियोंसे पूछा—नदियो! मैं देखता हूँ कि बाढ़के समय तुम सब बहुतसे बड़े-बड़े वृक्षोंको जड़से उखाड़कर अपने प्रवाहमें बहा ले आती हो, किंतु उनमें बेंतका कोई पेड़ नहीं दिखायी देता, इसमें क्या रहस्य है? इसपर देवनदी गंगाने कहा—नदीश्वर! आपकी बात बहुत अर्थवाली है। जो पेड़ हमारे प्रवाहमें बहकर आते हैं, वे तनकर गर्वसे हमारे सामने खड़े रहते हैं, हमारे पराक्रमको देखकर झुकते नहीं, नम्र नहीं होते, अकड़कर खड़े ही रहते हैं, अतः इस प्रतिकूल बर्तावके कारण उन्हें नष्ट होकर अपना स्थान छोड़ना पड़ता है, परंतु बेंत एक ऐसा वृक्ष है, जो ऐसा आचरण नहीं करता, वह हमारे आते हुए वेगको देखता है तो नम्रतासे झुक जाता है, परिस्थितिको पहचानता है और उसीके अनुसार बर्ताव करता है, कभी उद्दण्डता नहीं दिखाता और अनुकूल बना रहता है, उसमें कोई अकड़ नहीं रहती, इसीलिये वह अपने स्थानपर बना रहता है। जब हमारा वेग शान्त हो जाता है तो वह पुनः सीधा खड़ा हो जाता है, जो पौधे, वृक्ष, लता-गुल्म आदि हवा और पानीके वेगसे सामने झुक जाते हैं और वेग शान्त होनेपर पुनः स्थिर हो जाते हैं, ऐसोंका कभी पराभव नहीं होता।

शील-विनय विजयका मूल है। अतः अपने जीवनमें विनयको प्रतिष्ठितकर अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ते रहना चाहिये। ऐसेमें तत्त्व बहुत दूर नहीं रहने पाता।

भीष्मने पुनः कहा—युधिष्ठिर! इसी प्रकार राजाको चाहिये कि वह अपने तथा परपक्षके पराक्रमको भलीभाँति समझकर नीतिके तत्त्वको समझनेका प्रयास करे। इस प्रकार समझकर जो व्यवहार करता है, उसकी कभी पराजय नहीं होती। **[महा० शान्ति० ११३]**

'गावो विश्वस्य मातरः'

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)

गोसेवा प्रत्येक वर्णाश्रमी व्यक्तिका कर्तव्य है। प्रशासन भी गोसेवाके प्रकल्प चला रहा है तो यह प्रशंसनीय है। हम हमेशा अपने प्रवचनके पूर्व एवं अन्तमें '**गोहत्या बन्द हो**' का नारा लगाते हैं। गोहत्या भारतमें बन्द हो, यह हमारे जीवनका लक्ष्य है।

हमें हार्दिक वेदना है इस समाचारसे कि विश्वमें भारत अग्रणी गोमांस-निर्यातक देश है। यह कैसे हो सकता है कि जिस देशमें सर्वाधिक प्राचीन संविधान ऋग्वेदके रूपमें पाया जाता है, जिसमें अनेकशः यह वर्णित है कि गाय सर्वथा अवध्या है। भारत राम-कृष्णका देश है। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं नंगे पैरोंसे चलकर गोचारण-लीला की। स्वयंको गोपाल, गोविन्द ख्यापित किया। अपने दिव्य-जन्मके उद्देश्योंमें एक गायकी रक्षा, सेवाको बतलाया। ऐसे श्रीराम-कृष्णका देश भारत गोमांसकी विश्वविख्यात मण्डी कैसे हो सकता है? क्या इसका दायित्व शासनका नहीं है?

भारतीय संस्कृतिका प्रमुख आधार गाय है। लौकिक रूपमें भी भारतकी कृषिप्रधान अर्थव्यवस्था होनेसे गोवंशको प्रश्रय दिया जा सकता है। आज भयंकर प्रदूषित होते वातावरणमें गाय ही हमारी रक्षा कर सकती है। दिनोंदिन पनप रहे भयंकर रोगाणु, बैक्टीरिया, जिनको अभीतक जाना ही नहीं गया, इनका समाधान आधुनिक चिकित्सामें भी नहीं है। अतः आगे आनेवाले भयंकर प्रदूषित वातावरणसे अपनी रक्षाके लिये भी हमें गायके साथ जीना सीखना होगा। वरना आनेवाली महामारीसे हम नहीं बच सकेंगे।

गायकी शताधिक श्रेणियाँ भारतमें पायी जाती हैं, जो कि अन्यत्र कहीं नहीं हैं। शासनको गायकी विभिन्न देशी श्रेणियोंको चिह्नितकर अलग-अलग उनका मूलरूपमें ही संरक्षण करना चाहिये। श्रेणीसुधारके नामपर गायकी नस्लको बदलना गायको मारने-जैसा ही है, यह भी अपराधकोटि है। गाय चेतन प्राणी है और वह एक प्रकृतिप्रदत्त उद्देश्यसे प्रकट हुआ है, उसकी रक्षा उसके मूलरूपमें ही होना आवश्यक है। जैसे सिंह आदि प्रकृतिप्रदत्त शौर्य, क्रौर्य गुणोंके साथ ही हैं; श्रेणीसुधारके नामपर सिंहत्वको न तो बढ़ाया जा सकता है, न घटाया जा सकता है। इसी तरह गाय मनुष्यके शारीरिक, मानसिक पापोंको नष्ट करने, पृथ्वीका पोषण करने-जैसे अनेकों गुणोंको अपने अस्तित्वमें धारण करती है तो यह कहा जा सकता है कि गायका अस्तित्वमात्र ही कल्याणकारी है, इसके अस्तित्वसे छेड़छाड़ करना भयावह ही होगा। अब यह बात भी सुननेमें आ रही है कि जर्सी गायका दूध विभिन्न रोगोंका कारण है। हमारे शास्त्रोंके अनुसार भगवान्ने गायका निर्माण किया है, उसके रोम-रोममें तैतीस करोड़ देवता विराजमान हैं। गंगा और लक्ष्मी आमन्त्रणकी बाट जोह रही थीं, आमन्त्रण न मिलनेसे उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि उन्हें गायके शरीरमें स्थान दिया जाय, तबसे गायके गोबरमें लक्ष्मी और मूत्रमें गंगा रहती हैं। समस्त शुभकार्योंमें भूमिको प्रथम गायके गोबरसे लीपा जाता है। गोमूत्र मनुष्यके पापोंका नाश करता है। आयुर्वेदके अनुसार पेटके रोग, लीवरकी खराबी, कैंसरतकमें गोमूत्र उपयोगी है। यह वेदवचन है कि गाय निरपराध अदिति है, उसको मत मारो, यही बात बछड़े और बैलके लिये भी कही गयी है। हम चाहते हैं कुछ प्रदेशोंमें ही नहीं, समस्त भारतमें गोहत्या बन्द होनी चाहिये। उत्तर प्रदेशके किसी मन्त्रीने कहा था कि सरकार गोहत्या बन्द करके हिन्दूराज्य लाना चाहती है, जो मुसलमानोंके विरुद्ध है। इसपर हमने कहा था—'हम हिन्दूराज्य नहीं, रामराज्य स्थापित करना चाहते हैं। रावण, कंस, दुर्योधन, जरासंध हिन्दू ही थे; हम उनके जैसा राज्य नहीं चाहते। रामराज्य इसलिये चाहते हैं; क्योंकि रामराज्यमें कुत्तेको भी न्याय मिला था तो गायको भी न्याय मिलेगा। मुसलमानोंको रामराज्यसे भयभीत नहीं होना चाहिये; रामराज्यमें उनको भी न्याय मिलेगा।'

गाय घास चरकर हिन्दू-मुसलमानका भेदभाव किये बिना हमें मीठा दूध देती है। उसके गोबरसे खाद

बनती है, खेतीके लिये वह बैल देती है, स्वयं जीवनभर दूध देकर आगे भी दूधके लिये बछिया देती है। प्राचीन भारतमें व्यवस्था थी कि गायके लिये गोचरभूमि एवं ग्राम एवं नगरमें भी सामूहिक गायोंके बैठनेके लिये भूमि हुआ करती थी। किंतु आजकल उसे भी शासनने टुकड़ोंमें बाँट दिया है। वन विभाग गायोंको वनमें प्रवेश नहीं करने देता और गोचरभूमि भी नहीं, तो गायपर गम्भीर संकट है। किसान मशीनसे फसल काट रहे हैं, जिससे भूसा नहीं निकल रहा और भूसा जला भी दिया जाता है, किसानोंद्वारा गायका खाद्य नष्ट हो रहा है। जिन प्रदेशोंमें गोहत्यापर प्रतिबन्ध है, वहाँसे गायोंको काटने बाहर ले जाया जाता है। गोहत्या-निषेध कानून भी अधूरे हैं, जिनमें यह कहा गया है कि १६ वर्ष बाद निरुपयोगी गाय, बैल काटे जा सकते हैं। इसकी आड़में उपयोगी भी काट दिये जा रहे हैं।

बहुत-से लोभी डॉक्टर सर्टिफिकेट देकर यह प्रमाणित भी कर देते हैं। हम चाहते हैं मनुष्योंका गायोंके साथ निरन्तर सम्बन्ध बना रहे। गायका दूध, दही, मठ्ठा सभी कुछ विशिष्ट है, मठ्ठेके सेवनसे जला आँव फिर दोबारा नहीं पनप सकता। गाय हिन्दू-मुसलमान सभीकी माँ है। मुसलमानका भी नवजात शिशु अगर उसकी माँसे विहीन हो जाय तो गायके दूधसे पल सकता है, गोमांससे नहीं। कुछ लोग कहते हैं—गाय आवारा पशु है, सड़कोंपर घूमती है, इसे काट देना चाहिये तो इसमें गायका क्या दोष है? दोष गायकी गोचरभूमि हड़पनेवालोंका है या जिसकी गाय है उसका है, दण्डनीय गाय नहीं है। गायकी कमाईसे जीवनयापन करनेवाले उसकी कमाईको हड़पकर उसी गायमें खर्च नहीं करते, उसको कटने भेज देते हैं। इसपर समाजको सोचना चाहिये। कुछ लोग इस तरह भी कह रहे हैं कि एक जगह ही गायको इकट्ठाकर उनकी सेवा की जाय, किंतु समस्त गायोंको एक जगह रखनेसे विपत्तिकाल जैसे-अतिवृष्टि, अकाल या स्थानविशेषपर फैलनेवाले रोगोंसे बहुत बड़ी हानिकी सम्भावना है। अतः घर-घर, गाँव-गाँव, नगर-नगरमें गोसेवाका सन्देश पहुँचना चाहिये। महाराष्ट्र सरकारने गोहत्या, गोमांसके विरुद्ध जब प्रतिबन्ध लगाया तो तथाकथित नेताओंने यह कहा कि इससे गरीब मुसलमान सस्ते प्रोटीनसे वंचित हो जायँगे, किंतु उन्होंने यह विचार नहीं किया कि करोड़ों शाकाहारी लोगोंका आहार गायका दूध है, उनका प्रोटीन गोदुग्ध है, क्या वे लोग इससे वंचित नहीं होंगे? चन्द मुट्ठीभर लोगोंके लिये करोड़ों लोगोंकी अनदेखी अनुचित है। क्या यही धर्मनिरपेक्षता है? अस्तु! गायके समस्त गुणोंको बतलानेका सामर्थ्य किसीमें नहीं; क्योंकि भविष्यमें होनेवाले किस रोगकी दवा गायसे प्राप्त गव्यसे सम्भव नहीं होगी, यह अभीसे कैसे कहा जा सकता है?

जो धेनु आयी न होती

(श्रीपारसनाथजी पाण्डेय)

धरा धाम पे धेनु आयी न होती।
तो उन्नति कृषी की बढ़ाई न होती॥

फिरा करते पैदल तुम कैलासवासी।
सवारी जो नन्दी की पायी न होती॥
चराते न फिरते दिलीप नन्दिनी को।
तो रघुकुल की फिरती दुहाई न होती॥
चरण पूजने को न पाते जनकजी।
जो हल-बैल से सीता आयी न होती॥

बजाते क्यों मुरली मधुबन में आके।
जो मुरारी ने गैया चराई न होती॥
धरा भी रसातल में जलमग्न होती।
जो गैया इनको सींगों पे उठायी न होती॥
भवसिन्धु से न होता तारण-तरण 'पारस'।
जो गोदान की रीति आयी न होती॥

साधकोंके प्रति—

[मृत्युके भयसे कैसे बचें?]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

संसारके सम्पूर्ण दु:खोंके मूलमें सुखकी इच्छा है। बिना सुखेच्छाके कोई दु:ख होता ही नहीं। ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये—इस इच्छामें ही सम्पूर्ण दु:ख हैं। मृत्युके समय जो भयंकर कष्ट होता है, वह भी उसी मनुष्यको होता है, जिसमें जीनेकी इच्छा है; क्योंकि वह जीना चाहता है और मरना पड़ता है! अगर जीनेकी इच्छा न हो तो मृत्युके समय कोई कष्ट नहीं होता, प्रत्युत जैसे बालकसे जवान और जवानसे बूढ़ा होनेपर अर्थात् बालकपन और जवानी छूटनेपर कोई कष्ट नहीं होता, ऐसे ही शरीर छूटनेपर भी कोई कष्ट नहीं होता। गीतामें आया है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥ (२।१३)

'देहधारीके इस मनुष्यशरीरमें जैसे बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, ऐसे ही देहान्तरकी प्राप्ति होती है। उस विषयमें धीर मनुष्य मोहित नहीं होता।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ (२।२२)

'मनुष्य जैसे पुराने कपड़ोंको छोड़कर दूसरे नये कपड़े धारण कर लेता है, ऐसे ही देही पुराने शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीरोंमें चला जाता है।'

शरीरमें अध्यास अर्थात् मैंपन और मेरापन होनेसे ही जीनेकी इच्छा और मृत्युका भय होता है। कारण कि शरीर तो नाशवान् है, पर आत्मा अमर (अविनाशी) है और इसका विनाश कोई कर ही नहीं सकता—'**विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति**' (गीता २।१७), '**न हन्यते हन्यमाने शरीरे**' (गीता २।२०)।

राम मरे तो मैं मरूँ, नहिं तो मरे बलाय।
अविनाशी का बालका, मरे न मारा जाय॥

शरीर प्रतिक्षण मरता है, एक क्षण भी टिकता नहीं और आत्मा नित्य-निरन्तर ज्यों-का-त्यों रहता है, एक क्षण भी बदलता नहीं। अत: जीनेकी इच्छा और मृत्युका भय न तो शरीरको होता है और न आत्माको ही होता है, प्रत्युत उसको होता है, जिसने स्वयं अविनाशी होते हुए भी नाशवान् शरीरको अपना स्वरूप (मैं और मेरा) मान लिया है। शरीरको अपना स्वरूप मानना अविवेक है, प्रमाद है और प्रमाद ही मृत्यु है—'**प्रमादो वै मृत्यु:**' (महा० उद्योग० ४२।४)।

प्रकृतिमें स्थित पुरुष ही सुख-दु:खका भोक्ता बनता है—'**पुरुष: प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।**' (गीता १३।२१) पुरुष प्रकृतिमें स्थित होता है—अविवेकसे। स्वरूपको शरीर और शरीरको अपना स्वरूप मानना अविवेक है। यह अविवेक ही दु:खका कारण है। तात्पर्य है कि मनुष्य नाशवान्को रखना चाहता है और अविनाशीको जानना नहीं चाहता, इस कारण दु:ख होता है। अगर वह नाशवान्को अपना स्वरूप न समझे और स्वरूपको ठीक जान जाय तो फिर दु:ख नहीं होगा।

शरीरमें जितना अधिक मैंपन और मेरापन होता है, मृत्युके समय उतना ही अधिक कष्ट होता है। संसारमें बहुत-से आदमी मरते रहते हैं, पर उनके मरनेका दु:ख, कष्ट हमें नहीं होता; क्योंकि उनमें हमारा मैंपन भी नहीं है और मेरापन भी नहीं है।

मृत्युके समय एक पीड़ा होती है और एक दु:ख होता है। पीड़ा शरीरमें और दु:ख मनमें होता है। जिस मनुष्यमें वैराग्य होता है, उसको पीड़ाका अनुभव तो होता है, पर दु:ख नहीं होता। हाँ, देहमें आसक्त

मनुष्यको जैसी भयंकर पीड़ाका अनुभव होता है, वैसा अनुभव वैराग्यवान् मनुष्यको नहीं होता। परंतु जिसको बोध और प्रेमकी प्राप्ति हो गयी है, उस तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त तथा भगवत्प्रेमी महापुरुषको पीड़ाका भी अनुभव नहीं होता। जैसे, भगवान्के चरणोंमें प्रेम होनेसे बालिको मृत्युके समय किसी पीड़ा या कष्टका अनुभव नहीं हुआ। जैसे हाथीके गलेमें पड़ी हुई माला टूटकर गिर जाय तो हाथीको उसका पता नहीं लगता, ऐसे ही बालिको शरीर छूटनेका पता नहीं लगा—

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥

(रा०च०मा० ४।१०)

बोध होनेपर मनुष्यको सच्चिदानन्द तत्त्वमें अपनी स्वाभाविक स्थितिका अनुभव हो जाता है, जिस तत्त्वमें कभी परिवर्तन हुआ नहीं, है नहीं, होगा नहीं और हो सकता नहीं। प्रेमकी प्राप्ति होनेपर मनुष्यको एक विलक्षण रसका अनुभव होता है; क्योंकि प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है।

बोध और प्रेमकी प्राप्ति होनेपर मृत्युमें भी आनन्दका अनुभव होता है। कारण कि मृत्युके समय तत्त्वज्ञ पुरुष एक शरीरमें आबद्ध न रहकर सर्वव्यापी हो जाता है और भगवत्प्रेमी पुरुष भगवान्के लोकमें, भगवान्की सेवामें पहुँच जाता है।

जिनका शरीरमें मैं-मेरापन नहीं मिटा है, उनको भी मृत्युमें, कष्टमें सुखका अनुभव हो सकता है, जैसे—शूरवीर सैनिकमें वीररसका स्थायीभाव 'उत्साह' रहनेके कारण शरीरमें पीड़ा होनेपर भी उसको दुःख नहीं होता, प्रत्युत अपने कर्तव्यका पालन करनेमें एक सुख होता है। उसमें इतना उत्साह रहता है कि सिर कट जानेपर भी वह शत्रुओंसे लड़ता रहता है। खुदीराम बोसको जब फाँसीका हुक्म हुआ था, तब अपने उद्देश्यकी सिद्धिसे हुई प्रसन्नताके कारण उसके शरीरका वजन बढ़ गया था। स्त्रीको प्रसवके समय बड़ा कष्ट होता है। परंतु पुत्र-मोहके कारण उसको दुःख नहीं होता, प्रत्युत एक सुख होता है, जिसके आगे प्रसवकी पीड़ा भी नगण्य हो जाती है। लोभी आदमीको रुपये खर्च करते समय बड़े कष्टका अनुभव होता है। परंतु जिस काममें अधिक लाभ होनेकी सम्भावना रहती है; उसमें वह अपने पासके रुपये भी लगा देता है और जरूरत पड़नेपर कड़े ब्याजपर लिये गये रुपये भी लगा देता है। लाभकी आशासे रुपये लगानेमें भी उसको दुःख नहीं होता। तपस्वीलोग गर्मियोंमें पंचाग्नि तापते हैं तो शरीरको कष्ट होनेपर भी उनको दुःख नहीं होता, प्रत्युत तपस्याका उद्देश्य होनेसे प्रसन्नता होती है। विरक्त पुरुषके पास स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि कुछ नहीं होनेपर भी उसको उनका अभावरूपसे अनुभव नहीं होता। अतः उसको दुःख नहीं होता, प्रत्युत सुखका अनुभव होता है। इतना ही नहीं, बड़े-बड़े धनी, राजा-महाराजा भी उसके पास जाकर सुख-शान्तिका अनुभव करते हैं। इस प्रकार जब शरीरमें मैं-मेरापन मिटनेसे पूर्व भी मृत्युमें, कष्टमें सुखका अनुभव हो सकता है, तो फिर जिनका शरीरमें मैं-मेरापन सर्वथा मिट गया है, उनको मृत्युमें दुःख होगा ही कैसे? निर्मम-निरहंकार होनेपर दुःखका भोक्ता ही कोई नहीं रहता, फिर दुःख भोगेगा ही कौन?

अगर भीतरमें कोई इच्छा न हो तो सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिसे सुख नहीं होता और अप्राप्ति तथा

विनाशसे दु:ख नहीं होता। इच्छा होनेसे ही सुख और दु:ख—दोनों होते हैं। सुख और दु:ख द्वन्द्व हैं, जिनसे मनुष्य संसारमें बँध जाता है। वास्तवमें सुख और दु:ख—दोनों एक ही हैं। सुख भी वास्तवमें दु:खका ही नाम है; क्योंकि सुख दु:खका कारण है—**'ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते।'** (गीता ५। २२) अगर मनुष्यमें कोई इच्छा न हो तो वह सुख और दु:ख—दोनोंसे ऊँचा उठ जाता है और आनन्दको प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्यमें न दिन है, न रात है, प्रत्युत नित्य प्रकाश है, ऐसे ही आनन्दमें न सुख है, न दु:ख है, प्रत्युत नित्य आनन्द है। उस आनन्दका एक बार अनुभव होनेपर फिर उसका कभी अभाव नहीं होता; क्योंकि वह स्वत:सिद्ध, नित्य और निर्विकार है।

अगर सब इच्छाओंकी पूर्ति सम्भव होती तो हम जीनेकी इच्छा पूरी करनेका उद्योग करते और अगर मृत्युसे बचना सम्भव होता तो हम मृत्युसे बचनेका प्रयत्न करते। परंतु यह सबका अनुभव है कि सब इच्छाएँ कभी किसीकी पूरी नहीं होतीं और उत्पन्न होनेवाला कोई भी प्राणी मृत्युसे बच नहीं सकता, फिर जीनेकी इच्छा और मृत्युसे भय करनेसे क्या लाभ? जीनेकी इच्छा करनेसे बार-बार जन्म और मृत्यु होती रहेगी तथा जीनेकी इच्छा भी बनी रहेगी! इसीलिये जीते-जी अमर होनेके लिये इच्छाका त्याग करना आवश्यक है।

शरीर 'मैं' नहीं है; क्योंकि शरीर प्रतिक्षण बदलता है, पर हम (स्वयं) वही रहते हैं। अगर हम वही न रहते तो शरीरके बदलनेका ज्ञान किसको होता? बदलनेका ज्ञान न बदलनेवालेको ही होता है। शरीर 'मेरा' भी नहीं है; क्योंकि इसपर हमारा आधिपत्य नहीं चलता अर्थात् इसको हम अपनी इच्छाके अनुसार रख नहीं सकते, इसमें इच्छानुसार परिवर्तन नहीं कर सकते और इसको सदा अपने साथ नहीं रख सकते। इस प्रकार जब हम शरीरको 'मैं' और 'मेरा' नहीं मानेंगे, तब उसके जीनेकी इच्छा भी नहीं रहेगी। जीनेकी इच्छा न रहनेसे शरीर छूटनेसे पहले ही नित्यसिद्ध अमरताका अनुभव हो जायगा।

असत्का भाव (सत्ता) नहीं है और सत्का अभाव नहीं है—**'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'** (गीता २। १६) सत् सत् ही है और असत् असत् ही है। अत: न सत्का भय है, न असत्का भय है। अगर भय रखें तो भी शरीर मरेगा और भय न रखें तो भी शरीर मरेगा। मरेगा वही, जो मरनेवाला है; फिर नयी हानि क्या हुई? अत: मृत्युसे भयभीत होना व्यर्थ ही है।

माँ

(श्रीरंधीरकुमारजी)

माता तेरी करुण-कथा को, मैं कैसे लिख पाऊँगा।
धरती सब कागज कर दूँ, पर तेरा अंत न पाऊँगा॥
ममता की मूरत थी माता मेरी, और करुणा की धारा थी।
आँचल में वात्सल्य प्रेम की, बहती अविरल धारा थी॥
आँखों में निश्छल प्रेम, हृदय से दया का सागर थी।
चरणों से आशीष की गंगा, बहती निर्मल धारा थी॥
वाणी से असीम प्रेम की, लहरें आती जाती थीं।
कभी किसी का अहित न करना, प्रति दिन पाठ पढ़ाती थीं॥
तेरी कृपा से ही हे जननी, नूतन शरीर को पाया था।
ममता के आँचल में पलकर, फूला नहीं समाया था॥
घुटनों के बल चल-चलकर, तेरे समीप जब आता था।
अमृत सुधा का पान कराती, परमानन्द को पाता था॥
तेरी ममता का अपार ऋण, मैं कैसे कभी चुकाऊँगा।
तुम संसार को छोड़ चली हो, कहाँ सहारा पाऊँगा॥
तेरा जाना यूँ लगता है, जैसे सब कुछ एक सपना था।
यथार्थ बदल सकता ही नहीं, यह सच तो निश्चित घटना था॥
तेरे जाने से हे जननी, संसार अधूरा लगता है।
हृदय विषाद से तपता है, घर-आँगन सूना लगता है॥
माता किसे पुकारूँ कहकर, माँ का अब नहीं सहारा है।
माता तेरी प्रेम सरिता का, जग में कहाँ किनारा है॥
तेरी बगियों की शोभा क्या, सब तुम बिन सूना लगता है।
माता विहीन पुत्र को जग क्या, त्रिलोक भी सूना लगता है॥
माता तेरी चरण रज में, श्रद्धा सुमन चढ़ाऊँ मैं।
दो ऐसा वरदान हे जननी जग में नाम कमाऊँ मैं॥

मानवताकी सफल योजना

(स्वामी श्रीनारदानन्दजी सरस्वती)

मानवताका परिचय मानव-धर्मसे ही होता है, शरीरकी आकृतिसे नहीं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धैर्य, क्षमा, दम, चोरी न करना, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना—इन दस धर्मके लक्षणोंसे युक्त मनुष्यको मनुने 'मानव' कहा है।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।

(योगदर्शन)

सभी जाति, देश, कालमें मनुष्यमात्रने इसे स्वीकार किया है। इन्हीं महाव्रतोंको दृढ़ करनेके लिये तथा व्यवहारको सुव्यवस्थित चलानेके हेतु राष्ट्र-निर्माणमें परम उपयोगी समझकर वर्णाश्रम-व्यवस्थाको आदरसहित पालन करनेमें बहुत कालतक ऋषियोंने प्रयास किया है।

प्राचीन इतिहाससे बोध होता है कि वर्णाश्रम-व्यवस्था-पालनमें उपर्युक्त महाव्रतोंकी जब-जब उपेक्षा की गयी, तब-तब मानव-समाजमें असंतोष, विग्रह, दुर्व्यवस्था तथा क्षोभ उत्पन्न हुआ, जिसके परिणामस्वरूप अवैदिक मतोंका प्रचार हुआ। कुछ कालतक सुख-शान्तिके आभासका अनुभव हुआ तथा वर्णाश्रम-धर्मरहित सामान्य धर्मोंका समुदायने आश्रय लिया, पर न वह अवैदिक धर्म सम्पूर्णतया व्यापक ही हो सका, न दीर्घकालतक स्थिर ही रहा। अपितु उसने सैकड़ों पन्थ, स्वेच्छाचारी वर्ग एवं भिन्न-भिन्न जातियोंको जन्म दिया। कलह, अशान्ति बढ़ गयी; स्वेच्छाचारिता, पाखण्ड, नास्तिकताका घोर प्रवाह चला। समयके परिवर्तनने समाजको भोग-लिप्सासे असन्तुष्ट, किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। तत्त्वदर्शियोंका अभाव होनेसे मानव-समाजको पथ-प्रदर्शन न मिल सका। जनता दुखी होकर अखिल सृष्टिके संचालक दैवी शक्तिसे प्रार्थना करने लगी। देव तथा देवदूतोंके रूपमें ऋषि-मुनियोंका अवतरण हुआ। उन्होंने अहिंसादि महाव्रतोंका स्वयं पालन करते हुए वर्णाश्रमकी मर्यादा-स्थापनाद्वारा मनुष्य-समाजको मार्ग दिखाया। प्राणिमात्रको सुख-शान्ति मिली, दीर्घकालतक समाजकी सुव्यवस्था चलती रही। केवल पंचमहाव्रतोंसे अथवा इनकी उपेक्षा करके वर्णाश्रम-धर्मसे समाजकी सुन्दर व्यवस्था नहीं बनी।

पूर्वकालीन इतिहासको भली प्रकार दीर्घकालतक मनन करनेसे यह निष्कर्ष निकलता है कि महाव्रतोंका पूर्ण आदर करते हुए समाजको किसी अंशतक सुख मिल सकता है। वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी उपेक्षा करके महाव्रतोंका सहस्रों वर्ष प्रचार किया गया, पर समाज सुव्यवस्थित न हो सका और पंचमहाव्रतोंकी उपेक्षा करके केवल वर्णाश्रमधर्म भी समाजको सन्तुष्ट न कर सका। पंचमहाव्रतका और वर्णाश्रमधर्मका शास्त्रविधिसे पालन करनेपर ही मानवताका पूर्ण विकास हो सकता है। शास्त्रका विधान मनुष्यमें पशुता और दानवताका परिहार करता हुआ मानवताके पूर्ण विकासरूप देवत्वतक उसे पहुँचानेमें समर्थ है।

तत्त्ववेत्ताओंने जिस मनुष्यमें पूर्ण मानवताका विकास पाया, उसे महापुरुष, पुरुषोत्तम आदि विशेषणोंसे सम्बोधित किया। संत, साधु, महात्मा शब्दोंसे भी व्यक्त किया है। श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायमें दैवी, आसुरी सम्पद्के लक्षणोंद्वारा मानवता और दानवताका अन्तर समझाया है। श्रीरामचरितमानसमें परम भागवत गोस्वामी तुलसीदासजीने संत, असंतके लक्षणोंद्वारा दोनों पक्षोंका निरूपण किया है।

भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने मानवताके पूर्ण विकासके लिये वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी रक्षाका आदर्श उपस्थित किया। केवल प्रवचनसे नहीं, अपितु अधिक-से-अधिक लोकसंग्रहके अर्थ—स्वधर्मका पालन किया।

उसी प्रकार लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णभगवान्‌ने जिनको स्वयं कर्म करनेकी आवश्यकता न थी, लोकसंग्रहके निमित्त स्वयं धर्ममर्यादाका पालन किया और समुदायसे करवाया। जिससे यह प्रतीत होता है कि जीवन्मुक्त तत्त्ववेत्ता ही स्वधर्मका पालन करके मानव-समाजको मानवताकी शिक्षा देनेमें समर्थ हुए हैं, सफल हो रहे हैं और सफल होंगे। आचरणकी उपेक्षा करके केवल बृहस्पतिके समान वक्ता होकर भी सुमधुर प्रवचनद्वारा ही जनताको सत्कर्मकी शिक्षा देनेमें कोई समर्थ नहीं हो सकता। भले ही उपदेशसे सात्त्विक भाव अंशतः जाग्रत् हो जायँ। शास्त्रविधानके आधारपर जीवन्मुक्तोंद्वारा मानवताकी शिक्षा कभी विफल नहीं हो सकती।

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।

(नारदभक्तिसूत्र)

परब्रह्म परमात्मा अचल है, सनातन है। सच्चिदानन्दघन, अपरिवर्तनशील, जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय जिसमें आरोपित है, वही अक्षय सुखका भण्डार मनुष्योंके लिये जीवनका लक्ष्य होना चाहिये। विषयभोगमें सुख नहीं। नश्वर पदार्थ परिणाममें दुःखदायी होनेसे वैराग्य करनेयोग्य हैं। परमात्मा ही अक्षय सुख-भण्डार होनेके कारण सब जीवोंको अमर सुख प्राप्त करा सकता है।

जो आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नासा । अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

प्राचीन कालके इतिहासमें दैवी आचरणोंके आधारपर शास्त्रोक्त विधिसे ब्रह्मप्राप्तिके उद्देश्यका आश्रय लेकर एक समाज अपनी उन्नति करता था। दूसरा विषयभोगको ध्येय मानकर आसुरी गुण-कर्म-स्वभावका आश्रय लेकर अपना उत्थान करता था। कभी-कभी परस्परमें टकरानेसे देवासुर-संग्राम हो जाता था। महाभारत तथा लंकाकाण्ड इसीके उदाहरण हैं।

एक ही वंशमें दैवी, आसुरी प्रकृतिके कारण ही दो समुदायोंका बन जाना स्वाभाविक था। एक समाजमें दो उद्देश्य, दो विधान-पालन नहीं हो सकते। रावणका वंश भी उत्तम कुल पुलस्त्यका परिवार था। पाण्डव और कौरव भी चचेरे भाई थे। कौरवों, पाण्डवोंका विपरीत उद्देश्य होनेसे भगवान् श्रीकृष्ण भी नीति और प्रकृतिके कारण समन्वय न करा सके। यदि दोनों समाज एकमें मिलकर रहते तो पाण्डवोंका विनाश हो जाता। वेश्या और पतिव्रताकी साझेकी दूकान चलानेमें वेश्याकी कोई क्षति नहीं, पतिव्रताकी ही क्षति है। संत-कसाईके साझेकी दूकानमें संतकी क्षति है, कसाईकी नहीं; भेड़ और भेड़ियाको एक कमरेमें रखनेसे भेड़को भय है, भेड़ियाको नहीं। ऐसे ही दैवी गुणोंके पुरुषको क्षति है, आसुरी वृत्तिवालेको नहीं।

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजबनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥

यदि किसी मनुष्यको अपनी दानवता दुःखदायी प्रतीत हो, ग्लानि हो तो उसे मानवताके सच्चे पुजारी, केवल साधु-वेशधारी ही नहीं, अपितु साधुप्रकृतिवालोंकी शरणमें जाना चाहिये। जैसे एक रत्नाकर डाकूको जब अपनी दुश्चरित्रता, दानवतापर ग्लानि हुई, उसी समयसे उसने संतोंकी शरण ली, तप किया और त्रिकालदर्शी, महाकवि, महामानव, महर्षि वाल्मीकिके पदको प्राप्तकर भगवान् श्रीरामको आशीर्वाद देने योग्य बन गये।

भगवान् गीतामें कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(९।३०)

कोई भी मनुष्य अपने दुश्चरित्रोंसे दुःखित होकर मेरी शरणमें आता है तो मैं उसको शीघ्र ही साधुवृत्तिवाला बनाकर सदैवके लिये सुखी करके जीवन कृतार्थ कर देता हूँ।

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥

सभी शास्त्रोंका यही सार है कि मानवताका विकास करो। दानवताका विनाश करो। रजोगुण, तमोगुण दानवताको बढ़ानेवाले हैं, सत्त्वगुणकी वृद्धिसे मानवताका विकास होता है। भागवतके एकादश स्कन्धमें मानवता बढ़ानेके दस साधन बताये हैं—

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।४)

शास्त्र, जल, प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र, संस्कार—ये दस वस्तुएँ सात्त्विक, राजस, तामस जिस गुणवाली होती हैं, उसी गुणको बढ़ाती हैं।

अतः सात्त्विक समाज एकत्रित करके मानवताके सद्गुणोंद्वारा एकताका संगठन करे, जिससे समाज शनैः-शनैः अपनी दुर्वृत्तिका दमन करके सत्त्वगुणी बननेका प्रयास कर सके।

जो व्यक्ति धर्म, ईश्वरसे विमुख होकर समाजकी सेवामें लगे हैं, उनमें भी मानवताके लक्षण मिलते हैं। जो ईश्वर, धर्मको माननेवाले समाजकी सेवाको भूले हुए हैं, उनमें भी कुछ अंश मानवताके पाये जाते हैं। यदि ईश्वर, धर्मको माननेवाले जनताको जनार्दन समझकर समाज-सेवाको भगवत्सेवाका अंग समझें और समाजसेवी पुरुष ईश्वर-स्मरणको समाज-सेवाका अंग समझें तो विश्वशान्ति होनेमें अधिक समय नहीं लगेगा। इसीसे भागवतकार श्रीव्यासजीने परम पूजाके रहस्यको व्यक्त किया है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥
ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥

(श्रीमद्भा० ११।२।४५-४६)

'प्राणिमात्रमें भगवद्बुद्धि रखकर उस विराट् भगवान्‌को सर्वत्र देखना मानवताका सत्यस्वरूप है। ईश्वरसे प्रेम, भक्तोंसे मैत्री, अज्ञानीपर कृपा, दुष्टोंके प्रति उपेक्षाभाव रखना मानवताका आंशिक रूप है।' अतः अपनी वृत्तिको सुन्दर बनानेके हेतु आन्तरिक विकारोंकी निवृत्ति करना चाहिये। हृदयकी सुन्दरता सच्ची मानवता है, शरीरकी सुन्दरता नहीं। काम-क्रोधादि षट् विकार मनुष्यको दानवताकी ओर प्रवृत्त करते हैं, इनकी निवृत्ति और दैवीसम्पद्के लक्षणोंकी वृद्धि मानवताके विकासमें सहायक है।

समाजका नेतृत्व तत्त्ववेत्ता ही कर सकते हैं; क्योंकि वे राग-द्वेषसे रहित होते हैं—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

(गीता २।६४)

रागी पुरुष गुण न होते हुए भी आसक्तिके कारण गुण देखता है। द्वेषदृष्टिवाला पुरुष दोष न होते हुए भी दोष देखता है। अतः रागद्वेषरहित होकर व्यावहारिक क्रिया करे। शुद्ध हृदयवाले पुरुषोंके संगठनमें देर नहीं लगती। राग-द्वेष-युक्त पुरुषोंका संगठन दुःसाध्य है, अतः एक विचारवाले सभी सात्त्विक समाजका संगठन मानवताके आधारपर हो सकता है। यह ध्रुव सत्य है। ऋषियोंका यह उदार सिद्धान्त प्राणिमात्रके लिये हितकारी है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

जीवनका सच्चा लाभ

(श्रीबरजोरसिंहजी)

संसारका प्रत्येक प्राणी जीवनमें सदा लाभ-ही-लाभ चाहता है, अपनी हानि तो कोई चाहता नहीं, परंतु देखा यह जाता है आम तौरपर आदमी धनके लाभको ही वास्तविक लाभ समझते हैं। जिन्होंने किसी भी तरहसे छल, कपट, बेईमानीसे धनका संग्रह कर लिया है, वे अपने-आपको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, अपने-आपको नम्बर एकका आदमी मानते हैं। इसके विपरीत ईमानदारीसे पैसा कमानेवालों और कम पैसोंमें अपना गुजारा करनेवालोंको आजके समाजके तथाकथित सम्भ्रान्त लोग पिछड़ा और दकियानूसी कहते हैं। विडम्बना यह कि आज जो झूठ बोलता है, छल-कपट करता है, वह हर जगहपर कामयाब होते देखा गया है। आज तो ऐसा समय आया है, घोर कलियुगका कि ***'साँचे को फाँके पड़ैं लाबर लड्डू खाय।'*** वाली कहावत लागू हो रही है। जो चापलूसीसे धन अर्जित कर लेते हैं, वे कहते फिरते हैं कि मैंने ऐसा किया, मैंने वैसा किया, मैंने उसको मूर्ख बनाया, मैंने उसका धन छीना। वे इस तरहकी बातें करते देखे जाते हैं, पर यहाँपर एक सवाल खड़ा होता है कि क्या धन कमा लेना ही जीवनका वास्तविक लाभ है? जिन्होंने सन्तों-सत्पुरुषोंकी संगति नहीं की, वे वास्तविक लाभको नहीं समझ सकते। आइये अब देखें कि वास्तविक लाभ क्या है। लाभकी परिभाषा बताते हुए सन्तशिरोमणि तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें कह रहे हैं कि—

लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना॥
हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥

जिसकी महिमा वेद-सन्त और पुराण गायन करते हैं, उस प्रभुकी भक्तिके समान क्या कोई अन्य लाभ है? अर्थात् नहीं और हे भाई! मनुष्यशरीर पाकर भी प्रभुका भजन न किया जाय जगत्में, क्या इसके समान कोई दूसरी हानि है? अर्थात् नहीं है।

इस मूल्यवान् शरीरसे अथक परिश्रम करके जो केवल सांसारिक धन कमा रहे हैं, जिसे अन्तमें स्वयं ही मिट्टी हो जाना है, इस धनसे क्या लाभ! परलोकमें तो यह धन साथ नहीं जाता। संसारी मनुष्योंकी यह दशा देखकर सत्पुरुष गुरु श्रीअर्जुनदेवजी महाराज कहते हैं कि—

'रे मूड़े लहि कउ तूँ ढीलादीला तोटे कउ बेगि धाइआ॥'

(गुरुवाणी)

'हे अज्ञानी मनुष्य। जीवनके सच्चे लाभके लिये तू टालमटोल और आलस्य करता है, परंतु आत्मिक हानिकी ओर शीघ्र दौड़-दौड़कर जाता है।'

मनुष्यशरीररूपी पूँजी अथवा श्वासोंकी पूँजी जो परमपिता परमात्माने हमको दी है, वह तो निरन्तर हाथोंसे जा रही है, परंतु उस पूँजीके बदले आप कौन-सा लाभ ले रहे हैं, इसपर जरा गम्भीरतापूर्वक विचार कीजियेगा। इस पूँजीके बदले आप सच्चा लाभ लेकर संसारसागरसे जाओगे तो परमपिता परमात्माकी कृपा प्राप्त करोगे और जन्म-मरणके चक्करसे हमेशा-हमेशाके लिये छूट जाओगे, परंतु इस पूँजीके बदले संसारका धन बटोरते रहोगे तो धन तो साथ जायगा नहीं, बहुमूल्य शरीर भी व्यर्थ हो जायगा। इतिहास गवाह है कि धन कभी किसीके साथ नहीं गया, मुट्ठी बाँधकर आये थे और खाली हाथ जाना पड़ेगा। आप कुछ लेकर जाना चाहते हो या खाली हाथ जाना चाहते हो, ये निर्णय तो आपको ही करना है। भजन, भक्ति, रामनाम और किये गये शुभ कर्मका सच्चा धन ही अन्तकालमें सहायता करेगा और परलोकमें साथ जायगा, सांसारिक धन तो यहीं छूट जानेवाला है। सन्त सहजोबाईने स्पष्ट कहा है कि—

यह अवसर दुरलभ मिलै, अचरज मनुषा देह।
लाभ यही सहजो कहै, हरि सुमिरन करि लेह॥

हमारे सन्त महापुरुषोंका यह कहना है कि आप धन जरूर कमाओ; क्योंकि धनके वगैर कुछ भी होनेवाला

नहीं, धन कमाना भी अत्यन्त आवश्यक है, पर धन कमानेमें किसीका गला मत काटो, किसीके पेटमें छुरी मत मारो, दूसरेका हक मत छीनो, अपनी मेहनतकी कमाईमें सन्तोष करो, हरदम इस बातका ध्यान रखो कि यह धन साथ नहीं जायगा। भक्तिका सच्चा धन एकत्र करते रहो, उसीसे हमें सच्चा सुख और शान्ति मिलनेवाली है। श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि 'जगत्‌में वे ही मनुष्य चतुरोंके शिरोमणि हैं, जो भक्तिरूपी मणिके लिये भलीभाँति यत्न किया करते हैं'—

चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

(रा०च०मा० ७। १२०। १०)

महाराज भर्तृहरि अपनी वियोगावस्थामें अपने अद्वितीय ग्रन्थ भर्तृहरिशतकके वैराग्यशतकमें लिखते हैं—

यतो मेरुः श्रीमान् निपतति युगान्ताग्निवलितः
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरमकरग्राहनिलयाः।
धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता
शरीरे का वार्ता करिकलभकर्णाग्रचपले॥

अर्थात् इस संसारमें सदा कोई वस्तु नहीं रहती। स्वर्णका भण्डार सुमेरुपर्वत प्रलयकी अग्निमें भस्म हो जाता है। समुद्र सूख जाते हैं। विशाल पर्वतोंका बोझ उठानेवाली पृथ्वी भी रसातलमें चली जाती है तो मनुष्य इस क्षणभंगुर शरीरका क्यों गर्व करता है, इसको भी एक दिन नष्ट हो जाना है।

एक दूसरे श्लोकमें वे कहते हैं—

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्।
सम्पादिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थितास्तनुभृतां तनवस्ततः किम्॥

श्लोकका भाव यह है कि संसारभरका वैभव मिल जाय, शत्रुओंको यदि परास्त कर दिया जाय या बहुत-से मित्र बना लिये जायँ अथवा चिरायुष्य प्राप्त हो जाय तो भी क्या, व्यक्ति कुछ भी कर ले, यदि उसने जीवन-मरणसे मुक्ति पानेके प्रयास नहीं किया तो सब व्यर्थ है।

राजा भर्तृहरि एक अन्य श्लोकमें कहते हैं—

जीर्णा कन्था ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः किं
एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किम्।
भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथवा वासरान्ते ततः किं
व्यक्तज्योतिर्न वान्तर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम्॥

अर्थात् तनपर चिथड़ा पहना या पीताम्बर धारण किया, इससे क्या फर्क पड़ता है। घरमें एक स्त्री हो या अनेक, हाथी-घोड़े हों या न हों, भोजन रूखा-सूखा खाया या तर माल खाया, इन बातोंसे कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन यदि मोक्षके लिये प्रयत्न नहीं किया तो जीवन तो बेकार ही चला गया। जीवनका सच्चा लाभ तो मिला ही नहीं।

खतरनाक चोर

रास्तेमें पड़े हुए हड्डीके टुकड़ेसे अपने-आपको बड़ी सावधानीसे बचानेवाला मनुष्य चमड़ेसे मढ़ी हुई हड्डियोंका स्पर्श करनेके लिये कितना पागल हो जाता है?

इस शरीरमें आड़ी-तिरछी हड्डियाँ जमायी गयी हैं और मांस-पिण्ड रखकर उन्हें नाड़ियोंसे बाँधा गया है। बादमें ऊपरसे सुन्दर चमड़ेका आवरण चढ़ाया गया है।

इस शरीरसे निकलनेवाले किसी भी पदार्थको देखनेके लिये मन तैयार नहीं होता है, फिर भी उसके स्पर्शके लिये मन कितना अधिक पागल हो जाता है?

याद रखो, ये इन्द्रियाँ चोरसे भी ज्यादा खतरनाक हैं। चोर जिसके घरमें रहता है, उसके यहाँ तो कम-से-कम चोरी नहीं ही करता है, किंतु इन्द्रियाँ आत्माके घरमें रहकर भी उसका विवेकरूपी धन लूट लेती हैं और उसे गर्तमें गिरा देती हैं।

अतः अपनी आत्माके विवेकरूपी धनको लूटनेके लिये तैयार बैठी इन्द्रियोंसे हमेशा सावधान रहो।

—गोलोकवासी महात्मा श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज

कहानी—

चौधरीजीका मायरा

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

हिन्दुओंमें बहनके पुत्र या पुत्रीके विवाहपर भाई भात (मायरा) लेकर बहनके यहाँ जाता है। यह प्रथा हजारों वर्षोंसे चली आ रही है। यदि भाई न हो, तो पीहरके पड़ोसी या गाँवके किसी व्यक्तिद्वारा चुनरीका नेग किया जाता है। भातके नेगचारके बिना विवाहके आगेके कार्यक्रम रुके रहते हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दीकी घटना है। जूनागढ़के पास अंजार नामका एक कसबा है। यहाँ नरसी मेहताकी पुत्री नानीबाईकी ससुराल थी। नानीबाईकी पुत्रीका विवाह था। परम्पराके अनुसार जूनागढ़से मेहताजी भात लेकर आनेवाले थे, परंतु इसके लिये उनके पास साधन नहीं थे। वे भगवद्भक्त थे, जो कुछ था भी, साधु-सन्तोंकी सेवा-आवभगतमें खर्च कर दिया और उन्हींकी मण्डलीमें रहकर हरिभजनमें मग्न रहते। परिवारके लोगों तथा मित्रोंको अंजार साथ चलनेके लिये उन्होंने आमन्त्रित किया। किंतु भला उनके साथ जाकर कौन अपनी हँसी कराता? आखिर वे अकेले ही एक टूटी-सी बैलगाड़ीपर अंजारकी ओर चल पड़े। साथमें साधु-मण्डली भी हरि-कीर्तन करती जा रही थी।

उधर नानीबाईके ससुरालवाले मेहताजीके स्वभावसे परिचित थे। उनकी माली हालत भी उनसे छिपी न थी। बाईको ताने देते कि मेहताजी बहुत बड़ा भात लेकर आ रहे हैं। बाईके पास चुपचाप सहनेके अलावा और कोई उपाय नहीं था। वह उदास रहती और पिताके आनेकी राह देखती।

इसी बीच एक दिन लोगोंने जूनागढ़की तरफसे गाजे-बाजे और रथोंकी घण्टियोंकी आवाज आती सुनी। उत्सुकतावश सभी जमा हुए। थोड़ी देरमें सचमुच ही बेशकीमती साजो-सामान लिये मेहताजीके मुनीम आ पहुँचे। अपना परिचय साँवरियाके नामसे दिया और बताया कि मेहताजीकी ओरसे भातका सामान लेकर आये हैं। बाईके लिये हीरे-मोती-जड़े गहने एवं चुनरी, सास-ननदके लिये कीमती वस्त्र, यहाँतक कि नौकर-चाकरोंके लिये सोनेकी कण्ठी और कपड़े।

ऐसे अवसरोंपर ससुरालवाले तरह-तरहकी फरमाइशमें पीछे नहीं रहते। अनेक प्रकारकी कीमती चीजोंकी माँग पेशकर नीचा दिखानेकी चेष्टा करते हैं, परंतु मुनीमजी तो मानो सारी परिस्थितियोंके लिये पहले ही से तैयारीके साथ आये थे। सबकी फरमाइशें पूरी कर दी और वापस चले गये।

इसके बाद मेहताजी इकतारेपर केदार रागमें भजन गाते हुए पुत्रीकी ससुराल पहुँचे, साथमें साधु-मण्डली भी थी। समधियानेवालोंने उनका ससम्मान स्वागत किया और बताया कि मुनीमजीके हाथों आपने जो चीजें भेजी थीं, वे मिल गयीं, परंतु वे चले गये। कह रहे थे, जरूरी काम है।

दूसरी घटना—१९वीं शताब्दीकी है। दिल्लीके उत्तरमें मेरठ, हापुड़, मुक्तेश्वर एवं सहारनपुर कसबोंमें उन दिनों गुज्जर पठानोंकी जागीरदारियाँ थी। यद्यपि मालगुजारी और उसकी वसूलीका अधिकार अँगरेजोंकी ईस्ट इंडिया कम्पनीको हो गया था, फिर भी इन जागीरदारोंमेंसे बहुतोंके सम्बन्ध एवं रसूक, कमोबेश दिल्लीके बादशाहसे कायम थे। सैकड़ों सालसे चले आये आपसी ताल्लुकात बाइज्जत बरकरार थे।

अँगरेज, सिक्खोंसे युद्धमें उलझे थे। मुगल-शासन पहलेसे ही शिथिल था। हुकूमत कम्पनी सरकारकी चलती थी, पर युद्धके कारण वह शासनको सुव्यस्थित नहीं कर पा रही थी। इसीलिये इन जिलोंके ताल्लुकों और जागीरोंमें चोरी-डकैती और राहजनीका जोर था। यहाँतक कि कुछ बड़े जागीरदार खुद प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे डकैतियाँ डलवाते या इन्हें संरक्षण देकर लूटके मालमें हिस्सा लिया करते।

मुक्तेश्वरके जागीरदार थे गुज्जर चौधरी रूपरामजी। हालाँकि उनकी सालाना आमदनी डेढ़-दो लाख ही थी, परंतु सस्तीका जमाना था, रुपयेका ढाई-तीन मन गल्ला तथा दस सेर तेल और तीन सेर घी मिलता था। अच्छी नस्लके घोड़ेकी कीमत मात्र बीस-पचीस रुपये थी। चौधरीका रोबदाब था, ठाठ-बाटसे रहते थे। दरवाजेपर दो हाथी झूमते, अस्तबलमें २५ घोड़े, २० रथ और पछाही बैलोंकी कई जोड़ियाँ। सैकड़ोंकी तादादमें निजी सिपाही भी थे।

उनकी जागीरकी खिराज पिछले पचास वर्षोंसे शाही हुक्मनामेके मुताबिक आला शाहजादेके पान-खर्चके लिये लगी हुई थी। अब हालाँकि वे बूढ़े होकर बादशाह हो गये थे और कम्पनीके साथ हुई शर्तोंके मुताबिक खिराजका हक उनका न रहा, वे महज पेंशनके हकदार रहे, फिर भी चौधरी रूपराम प्रतिवर्ष खिराजकी रकम लेकर, गाजे-बाजेके साथ मुक्तेश्वरसे बादशाह सलामतकी खिदमतमें नजर करने खुद अपने साथ ले जाते। साथमें हाथी, घोड़े, रथ, तम्बू-कनात और हथियारबन्द सिपाही रहते। चालीस मीलके सफरमें तीन दिन लग जाते। धर्मशालाएँ या सरायें कम थीं। जहाँ भी ठहरते, तम्बू और छोलदारियाँ लग जातीं।

हर सालकी तरह वे दिल्ली जा रहे थे। फसल अच्छी हुई थी। किसान और रिआया (प्रजा) सुखी थे। चौधरी पूरे हुजूमके साथ दिल्लीके लिये रवाना हुए।

दूसरे दिनका मुकाम शाहदराके लिये तय था। तीसरे दिनकी सुबहतक दिल्ली पहुँचनेकी खबर भेज दी गयी थी।

संयोगकी बात है। जिस दिन चौधरीका पड़ाव शाहदरामें था, उसी दिन वहाँके छोटू मेहतरकी पुत्रीकी शादी भी थी। हापुड़से भतई आनेवाले थे। बिना भातके आगेके नेगचार रुके हुए थे। जनवासेमें सारे बाराती बुलावेकी बाट जोह रहे थे। शामका झुटपुटा हो गया। भतई अबतक आये नहीं। छोटू और उसकी पत्नीकी चिन्ता बढ़ती गयी। अगर भात नहीं आया, तो फिर क्या हाल होगा। इज्जत मिट्टीमें मिल जायगी, क्या मुँह दिखायेंगे? इसी उधेड़बुनमें थे कि हापुड़की ओरसे बाजेकी आवाज आती सुनाई पड़ी। छोटूकी जान-में-जान आयी। जल्दी-जल्दी तैयारीकर वे सब अगवानीके लिये आगे बढ़े। उतावलेपनमें एक-दूसरेको पहचान न सके। छोटू आगन्तुकोंको सीधा अपने घरतक ले आया।

तब चौधरी साहबने पूछा, 'हमारे हरकारे और तम्बू किधर हैं? तुम हमें कहाँ ले आये?' अब तो छोटूको काटो तो खून नहीं। उसके होश गुम हो गये। डरके मारे काँपने लगा और जमीनपर लोटकर कहने लगा—'बापजी! गजब हो गया, मेरी लड़कीकी शादी है, बारात आ चुकी है, हापुड़से भतई आनेवाले थे। मैंने समझा कि ... ... परेशानीसे मेरा सिर फिरा था। गलतीसे आपको पहचान न सका। भतई समझकर आपको यहाँ ले आया। आपकी परजा हूँ मालिक! अनजानेमें गलती हो गयी, माफ करें।' उसकी घिग्घी बँधी थी।

चौधरीको सफरकी थकान थी। एक बार तो गुस्सा आया, त्योरी चढ़ आयी। फिर भी चुप रहे, सोचने लगे—बेचारेका क्या कसूर। भातका समय बीत रहा था, बारात शायद नाराज होकर लौट जाती। ऐसेमें हर बेटीका बाप होश खो देगा। उन्होंने यह कहते हुए अपनी खामोशी तोड़ी—'छोटू! हमने सुना कि रास्तेमें कंजरोंने हापुड़से आये कुछ लोगोंको लूटा है, हो सकता है, कहीं भतई और उनके आदमियोंपर मुसीबत पड़ी हो। खैर, तुम फिक्र मत करो। तुम्हारी बेटी, सो मेरी बेटी। सारे नेगचारकी तैयारी करो। जनवासेमें खबर भेज दो कि भतई भात ले आये हैं, वे बारात लेकर आ जायँ।

बादशाहकी नजरके लिये लायी हुई सारी कीमती चीजें भातमें दे दी गयीं। छोटूकी पत्नीको जब चौधरीजी चुनरी ओढ़ाने लगे, तो उस गरीबकी आँखोंमें आँसू उमड़ पड़े।

चौधरीजीने छोटूकी बेटीके हाथमें पचीस अशर्फियाँ रखते हुए सुखी-सौभाग्यवती रहनेका आशीर्वाद दिया। दूल्हेको सोनेके कड़े, पाँचों कपड़े और एक सोरठी घोड़ी दी। वरके पिताको मिरजई और चार अशर्फियाँ। हर बारातीको चाँदीकी एक-एक कटोरी। सारे कसबेमें चौधरीके भातकी चर्चा बढ़-चढ़कर फैल गयी। कोई निन्दा करता, तो कोई प्रशंसा।

दूसरे दिन चौधरी दिल्ली पहुँचे। बादशाह सलामतकी ओरसे सारा इन्तजाम था। अगवानीके लिये शहरका नाजिम खुद हाजिर था। दोपहरके वक्त जब दीवान-ए-खासमें उनके नामकी तलबी हुई, तो खिराजकी रकमकी बाबत चौधरीजीने अर्ज किया कि 'हुजूर! हमेशाकी तरह गाँवसे पूरी रकम लेकर ही चला, पर सफरमें कुछ हादसोंने इत्तफाक बना दिया कि पासमें कुछ भी न बचा। खैर, हम कुछ दिन फिलहाल यहाँ रुकेंगे और इस दरम्यान अपने इलाकेसे रकम मँगाकर आपकी खिदमतमें पेश करनेका फख्र हासिल करेंगे।'

बादशाहने मुसकराकर कहा—'इलाकेके शातिर चोर-डाकू भी आपका रुतबा मानते हैं, लिहाजा ताज्जुब है कि डकैतीका यह वाकया आपके साथ कैसे मुमकिन हुआ?'

चौधरीजीने सारी घटना सच-सच बता दी। बादशाह खुश होकर हँसने लगे। यद्यपि अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह केवल नाममात्रके बादशाह रह गये थे, किंतु वे अपने बाप-दादोंसे कहीं ज्यादा दरियादिल थे। स्वयं भावुक थे, शायर भी। कहने लगे—'चौधरी रूपराम! आपने जो कुछ भी किया, उससे मा-बदौलत बेहद खुश हैं। हम नाजिमको हुक्म फरमाते हैं कि खिराजकी पूरी रकम वसूलीके बतौर खजानेकी बहियोंमें जमा लिख दी जाय। छोटू मेहतरकी बेटीको दिया गया भात हमारी तरफसे समझा जाय और भतई—हम और तुम दोनों।'

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

मेरा नहीं है, प्रभुका है, मेरे लिये नहीं है, प्रभुके लिये है

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

बन्धन, मुक्ति, भक्ति—सोचना, मानना, स्वीकार करना, भाव (भावना) रखना—इन सबका समान अर्थ है। जो कुछ मेरे पास है, वह मेरा है और मेरे लिये है—ऐसा सोचना ही बन्धन है; वह मेरा नहीं है और मेरे लिये नहीं है—ऐसा सोचना ही मुक्ति है; वह प्रभुका है और प्रभुके लिये है—ऐसा सोचना ही भक्ति है। केवल सोचनेमात्रसे आप बँध जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं, भक्त बन जाते हैं।

मेरे पास क्या है—आपके पास केवल तीन चीजें हैं—शरीर, परिवारजन-पति, पत्नी, सन्तान आदि; निजी सामान-सम्पत्ति। इस विशाल संसारमें केवल इन तीन चीजोंके बारेमें ही आपके मनमें यह भावना रहती है—ये मेरी हैं, मेरे लिये हैं। इस भावनाका नाम है—मोह या ममता।

मोहके नुकसान—दुःख, चिन्ता, अशान्ति, मानसिक तनाव, निराशा, डिप्रेशन आदिका मूल कारण है मोह। मोहसे ही काम, क्रोध, लोभ आदि विकारोंका जन्म होता है, जो नरकके दरवाजे हैं। मोहसे ही अहंकार-जैसा खतरनाक शत्रु पैदा हो जाता है, जो मानवका सर्वनाश कर देता है। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

(७।१२१।२९)

इसका अर्थ है—सब रोगों (व्याधियों)-की जड़ मोह है। उन व्याधियोंसे फिर और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं।

विस्मृति—मोहमें आबद्ध मानव तीनों बातोंको भूल जाता है—अपना कर्तव्य, अपना स्वरूप, भगवान्। कर्तव्यकी विस्मृतिसे परिवार एवं समाजमें अशान्ति हो

जाती है। स्वरूपकी विस्मृतिसे वह अपने शरीरमें फँस जाता है। भगवान्‌की विस्मृतिसे वह नाशवान् जगत्‌में भटक एवं अटक जाता है, जन्म-मरणके कुचक्रमें फँस जाता है। श्रीमद्भगवद्‌गीतामें आया है—अर्जुनको मोह हो गया, वह दुःख एवं सन्देहके दलदलमें फँस गया। भगवान्‌ने गीताका उपदेश दिया, उसका मोह मिट गया, उसको सब कुछ याद आ गया। उसने भगवान्‌से कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

(१८।७३)

इसका अर्थ है—हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है।

दुर्गति—मोहके कारण ही आप पूरे जीवनभर इन तीन चीजोंकी चिन्तामें आबद्ध रहते हैं और इनकी चिन्तामें ही शरीरका परित्याग करते हैं। संत एवं ग्रन्थ-वाणीके अनुसार अन्तिम समयमें पुत्र, पत्नी, लक्ष्मी (रुपये), भवनकी याद आनेसे मरनेके बाद बार-बार क्रमशः सूकर, वेश्या, साँप और प्रेतकी योनि मिलती है। *'अन्त मति सो गति।'* अन्तिम समयमें भगवान्‌की स्मृतिसे कल्याण हो जाता है।

मोह नहीं है—किसी भी व्यक्ति एवं वस्तुको 'मेरा मानना' मोह नहीं है। परिवारजनोंके साथ रहना, वस्तुओंका सदुपयोग करना भी मोह नहीं है। आप सोचते हैं—यह मेरी माँ है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पत्नी है, ये मेरे पति हैं; यह मेरा मकान है, दुकान है, कारखाना है—ऐसा सोचना या मानना मोह नहीं है। यदि आप इनको मेरा नहीं मानेंगे तो आप इनके प्रति अपने कर्तव्यका पालन ही नहीं कर पायेंगे। मेरा मानकर ही बहनें अपने-अपने जन्मते बच्चोंको सँभालती हैं; मेरा मानकर ही माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियोंका लालन-पालन करते हैं, पढ़ाते हैं, योग्य बनाते हैं, विवाह करते हैं, मेरा मानकर ही परिवारजन अपने बीमार, वृद्ध एवं असमर्थ परिवारजनोंकी सेवा-सँभाल करते हैं; मेरा मानकर ही आप अपने व्यापार, उद्योग, सामान-सम्पत्तिको सँभालते हैं।

मोह है—जिनको आप मेरा मानते हैं, वे बने ही रहें, उनका वियोग न हो—इस इच्छाका नाम है—मोह। शरीर सदैव स्वस्थ ही रहे, बना ही रहे; परिवारजन बने ही रहें, सामान-सम्पत्ति बनी ही रहे—इस 'इच्छा' को 'मोह' कहते हैं। आप सोचते हैं—भूतकालमें इनसे मुझे बहुत सुख मिला था, ये मेरे काम आये थे, वर्तमानमें भी मुझे इनसे सुख मिल रहा है, ये मेरे काम आ रहे हैं; भविष्यमें भी इनसे मुझे सुख मिलेगा, ये मेरे काम आयेंगे—इसलिये ये सब बने रहें—इस इच्छाका नाम है—मोह। सोचिये, क्या इनको बनाये रखना आपके वशकी बात है। नहीं, कदापि नहीं। यदि ये नहीं बने रहें, इनका वियोग हो गया तो, आपको भीषण दुःख होगा। वियोग अवश्य होगा, या तो आप इनको पहले छोड़ेंगे या आपको ये पहले छोड़ेंगे।

मेरा नहीं है, प्रभुका है—मेरा नहीं है—इसका अर्थ है—मैं मालिक नहीं हूँ। प्रभुका है—इसका अर्थ है—प्रभु मालिक हैं। शरीर, परिवारजन, सामान-सम्पत्तिके मालिक प्रभु हैं, मैं नहीं। उन्होंने अपनी चीजें विशेष उद्देश्यसे कुछ समयके लिये मुझे सौंपी हैं।

कारण—प्रभु मालिक क्यों हैं, मैं मालिक क्यों नहीं हूँ—इसके निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कारण हैं—

(१) बनाना—इन तीनों चीजोंको प्रभुने बनाया है, मैंने नहीं। मैंने तो अपने शरीरको भी नहीं बनाया है।

(२) नियन्त्रण—रखनेकी दृष्टिसे इनपर पूर्णतया प्रभुका नियन्त्रण चलता है, मेरा लेशमात्र भी नियन्त्रण नहीं चलता है। मैं अपने शरीरको भी जबतक चाहूँ तबतक, जैसा चाहूँ वैसा, जहाँ चाहूँ वहाँ नहीं रख सकता।

(३) व्यवस्था—शरीरको जीवित रखनेके लिये तीन अत्यावश्यक वस्तुओंकी जरूरत होती है—श्वास, हवा, जल। शरीरको कुशलतापूर्वक रखनेके लिये अनेक सामान्य वस्तुओंकी जरूरत होती है, जैसे—भोजन, वस्त्र, आवास आदि। इन सबको बनाने एवं इनकी व्यवस्था करनेवाले प्रभु हैं, मैं नहीं। मनुष्य किसी भी

चीजको बना ही नहीं सकता। वह तो भगवान्‌की बनायी हुई चीजोंका रूप, रंग, स्थान आदि ही बदलता है।

(४) सँभाल—मालिक होनेके नाते इनको सँभालनेकी मुख्य जिम्मेवारी, लगभग ९९ प्रतिशत प्रभुकी है, मेरी जिम्मेवारी कम, केवल एक प्रतिशत है। कैसे? इसके निम्न तर्क हैं—पहला, इस शरीरके भीतर एवं बाहर अनेक प्रकारके अंग लगे हुए हैं। हृदय, लीवर, किडनी, फेफड़े, मस्तिष्क तन्त्र, आमाशय तन्त्र आदि भीतरके अंग हैं। आँखें, कान, नाक, जीभ, दाँत, हाथ आदि बाहरके अंग हैं। तुलनात्मक दृष्टिसे बाहरके अंगोंकी तुलनामें भीतरके अंग ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। भीतरके महत्त्वपूर्ण अंग प्रभु सँभालते हैं। बाहरी कम महत्त्वपूर्ण अंगोंको सँभालनेकी जिम्मेवारी मेरी है। दूसरा, जो कार्य हैं—भोजन करना और भोजनके बादका कार्य। बादका कार्य है—भोजन पचाना, रक्त बनाना, उस रक्तको नसोंमें भेजना, भोजनकी शक्तिको शरीरके रोम-रोमतक पहुँचाकर शरीरका सन्तुलित विकास करना आदि। भोजन करनेका कम महत्त्वपूर्ण कार्य प्रभुने मुझे सौंपा है। भोजनके बादका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जटिल एवं कठिन कार्य प्रभु करते हैं। तीसरा, गहरी नींदमें इस शरीरको पूर्णतया प्रभु सँभालते हैं, उस समय मुझे तो यह भी पता नहीं रहता कि मेरा शरीर कहाँ है, किस अवस्थामें है।

प्रभाव—तीनों चीजें मेरी नहीं हैं, मैं इनका मालिक नहीं हूँ—इस मान्यताका प्रभाव यह होगा कि आप इनकी चिन्ता एवं इनके न रहनेके भयसे मुक्त हो जायँगे। प्रभु मालिक हैं—इस मान्यताका प्रभाव यह होगा कि आपके जीवनमें प्रभुकी अखण्ड स्मृति जाग्रत् हो जायगी, भगवान्‌के नाते ये चीजें आपको प्रिय लगेंगी, इनकी सँभाल एवं सेवा होगी।

मेरे लिये नहीं है, प्रभुके लिये है—ये तीनों चीजें मेरे लिये नहीं हैं—इसका अर्थ है—ये तीनों चीजें मुझे वह नहीं दे सकतीं जो मैं चाहता हूँ, जो मेरी माँग है। मैं चाहता कि मेरा दु:ख, चिन्ता, भय, अशान्ति, मानसिक तनाव सदैवके लिये सर्वांशमें मिट जाय; मैं जन्म-मरणके कुचक्रसे मुक्त हो जाऊँ, मुझे स्थायी प्रसन्नता, परम शान्ति, परम आनन्द मिल जाय, मुझे प्रभुके दर्शन हो जायँ; मैं प्रभुका भक्त बन जाऊँ। अनेक वर्षोंसे ये चीजें मेरे पास हैं, फिर भी मेरी यह माँग पूरी नहीं हुई। स्मरण रहे—परिवारजनों और सामान-सम्पत्तिके द्वारा आपके शरीरको सुखसामग्री एवं सुख-सुविधाएँ मिलती हैं। शरीरके द्वारा आपको इन्द्रियजन्य क्षणिक दु:खमिश्रित सुख मिलता है, आपको शान्ति नहीं मिलती है।

प्रभुके लिये है—इसका अर्थ है—प्रभुको प्रेम देनेके लिये है। प्रभु मानव हृदयके प्रेमके भूखे हैं, प्रेमके प्यासे हैं। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥

(२।१३७।१)

इसका अर्थ है—श्रीरामचन्द्रजीको केवल प्रेम प्यारा है। जो जाननेवाला हो (जानना चाहता हो) वह जान ले।

प्रेम—प्रेमका अर्थ है—प्रसन्नता। प्रभुको प्रेम देनेका अर्थ है—प्रभुको प्रसन्नता देनेकी भावना रखना और इन तीनोंके द्वारा प्रभुको अपार, असीम, अनन्त प्रेम देना।

कैसे दें प्रेम—प्रभुको प्रेम देनेकी विधि इस प्रकार है—

(१) स्मृति—हर समय, हर परिस्थिति, हर अवस्थामें, हर स्थानपर आपको यह बात भलीभाँति याद रहनी चाहिये कि ये तीनों चीजें प्रभुकी हैं, इनके मालिक प्रभु हैं और इस यादका आपके जीवनमें यह प्रभाव होना चाहिये कि इनमेंसे कोई भी चीज प्रभु वापस लें तो आपको दु:ख, चिन्ता, अशान्ति न हो। आप प्रसन्नतापूर्वक प्रभुकी चीज प्रभुको लौटा दें।

(२) प्रभुकी प्रसन्नता—जबतक प्रभुकी ये तीन चीजें आपके पास हैं, तबतक इन तीनोंके साथ आप जो कुछ करें, उसका एकमात्र उद्देश्य रहे—प्रभुकी प्रसन्नता,

न कि अपना सुख। प्रभुकी प्रसन्नताके लिये सब कुछ करना है, अपने सुखके लिये कुछ भी नहीं करना है।

(३) सामान-सम्पत्ति—सूईसे लेकर हीरे-मोतीतक आपके पास जो भी सामान है; खेत, मकान, जमीन, जायदादके रूपमें जो भी सम्पत्ति है, उसको प्रभुकी धरोहर मानकर सावधानीसे सँभालकर रखें, सुरक्षित रखें, उसका सदुपयोग करें और मनमें यह भावना रखें कि इससे मेरे प्रभुको बहुत प्रसन्नता होगी। श्रीभरतलालजीने इसी भावनासे प्रभुकी सम्पत्तिको सँभाला। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई॥

(२।१८६।३-४)

इसका अर्थ है—सारी सम्पत्ति श्रीरघुनाथजीकी है। यदि उसकी (रक्षाकी) व्यवस्था किये बिना उसे ऐसे ही छोड़कर चल दूँ तो परिणाममें मेरी भलाई नहीं है; क्योंकि स्वामीका द्रोह सब पापोंमें शिरोमणि है। (श्रीभरतजीने सब प्रकारसे प्रभुकी सम्पत्तिकी व्यवस्था की)।

(४) शरीर—प्रभुने आपको तीन शरीर दिये हैं—स्थूल, सूक्ष्म, कारण। तीनों शरीरोंको प्रभुके मेहमान मानकर, प्रभुकी प्रसन्नताके लिये इनकी इस प्रकार सेवा करें—स्थूल शरीरको श्रमी, संयमी, सदाचारी और स्वावलम्बी रखें। सूक्ष्म शरीरको ममता, कामना, राग, द्वेष, दीनता एवं अभिमानसे मुक्त करके निर्मल और पवित्र बना लें। कारण शरीरको कर्तापनके अभिमानसे मुक्त करके सर्वथा अहंकारशून्य बनाकर इसके अस्तित्वको मिटा दें।

(५) परिवारजन—इस सत्यको सदैव याद रखें—परिवारजन साक्षात् प्रभु हैं, मैं उनका सेवक हूँ। इस भावसे परिवारजनोंकी भरपूर सेवा करें। उनको सुख, सुविधा, सम्मान, प्रेम, प्रसन्नता दें, उनके प्रति हितभाव रखें, उनका हित करें। उनकी सेवासे आप प्रभुके महान् भक्त बन जायँगे। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीराम कहते हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(४।३)

इसका अर्थ है—हे हनुमान्! अनन्य (भक्त) वही है, जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान्का रूप है।

(६) कार्य—प्रात:काल उठनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक आप अपने शरीर, घर, परिवार, नौकरी, व्यापार, समाज आदिके विभिन्न कार्य करते हैं। इन कार्योंको प्रभुके कार्य मानकर, प्रभुकी प्रसन्नताके लिये पूरी सावधानीसे करें। यही प्रभुकी पूजा है।

(७) साधना—पूजाके कमरेमें बैठकर अथवा पूजाघरके बाहर आप पूजा-पाठ, जप-तप, भजन-कीर्तन, व्रत, उपवास, तीर्थ, दान आदिके रूपमें जो भी साधना करते हैं, वह प्रभुकी प्रसन्नताके लिये करें।

प्रेमी-भक्त—जो भगवान्को प्रेम देता है, वह है भगवान्का प्रेमी भक्त। शरीर, परिवारजन, सामान-सम्पत्तिके द्वारा उपर्युक्त तरीकेसे प्रभुको प्रेम देकर आप प्रभुके प्रेमी-भक्त बन जायँ।

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामने यही बात बतायी है—

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥

(५।४८।१—७, ५।४८)

कहानी—

द्वार खोलो!

(श्री 'चक्र')

'अरे सतीश, बोल तो भाई!' अनेक बार पुकारने, किवाड़ोंको हिलाने और कुण्डी खटखटानेपर भी कोई शब्द भीतर सुनायी नहीं पड़ रहा था।

'बाबू!' धर्मशालाके चौकीदारने घबराहटसे रमाकान्तकी ओर देखा। यदि कोई दुर्घटना हुई तो पुलिस उसे तंग करेगी। 'अभी सबेरे तो नलपर देखा था इन बाबूको। बढ़ई सामने रहता है, बुला लाता हूँ!' यदि यात्री इस प्रकार चिल्लाने और द्वार पीटनेपर भी न बोले तो बढ़ईसे किवाड़ खुलवानेके अतिरिक्त उपाय क्या रहता है?

'और कोई उसके पास आया था क्या?' आशंका सहज थी।

'एक छोटा-सा कुत्ता है—बस!' चौकीदारने बताया। 'वह इनके साथ ही रहता है। दूसरा कोई इन सात दिनोंमें यहाँ इनके पास आया हो, ऐसा मुझे नहीं लगा। कहीं बाहर भी जाते मैंने नहीं देखा। केवल सामनेकी दूकानसे कुछ पूड़ियाँ ले आते हैं और बन्द हो जाते हैं इसी कमरेमें। बड़े दुखी जान पड़ते हैं।' बिखरे बाल, अस्त-व्यस्त वस्त्र, सूखा-सा मुख, चौकीदार जब इस स्वस्थ सुन्दर युवकको देखता, उसके मनमें सहानुभूति जाग्रत् हो जाती। किसी बड़े घरका लड़का है, वह कुछ पूछता यदि उसे तनिक भी आशा होती कि युवक उत्तर देगा, पर वह तो कमरेसे निकलता ही कम है। निकलता है तो जैसे किसीकी ओर न देखनेका नियम कर लिया हो।

'हीरा!' रमाकान्त द्वारकी पतली सन्धिपर नेत्र लगाकर भीतर देखनेका प्रयत्न कर रहा था। उसका ध्यान चौकीदारकी ओर नहीं था।

'वह जाग रहा है! कुत्तेको उसने पकड़ रखा है।' भीतर अपना नाम सुनकर कुत्ता कूँ-कूँ करने लगा था। वह द्वारके पास नहीं आ सका, इसका कारण समझना कठिन नहीं था। 'तुम एक पतला तार ले आओ!' धीरेसे चौकीदारको उसने समझाया।

'उमा एक ऐसा ही पिल्ला ले आया है।' रमाकान्तने द्वार खोल लिया तारसे। 'इससे कुछ अधिक झबरा। अब तुम दो कुत्तोंको सोते-सोते पकड़े नहीं रख सकोगे।'

'मेरे लिये एक ही बहुत है।' कुछ अप्रसन्नताके स्वरमें सतीश बोल रहा था। उसे इस प्रकार किसीका आना बहुत अरुचिकर हुआ था—अपने मित्रका आना भी। 'मैंने नियम पढ़ लिये हैं। आज धर्मशाला खाली कर दूँगा। तुम्हें कहना नहीं पड़ेगा।' चौकीदारकी ओर देखा उसने।

'उसमें सात दिनकी बात लिखी तो है।' चौकीदार संकुचित हुआ। उसके मनमें भी यह बात नहीं आयी थी। 'लेकिन खाली ही पड़ी है न सब धर्मशाला। कौन आता है यहाँ। आप कमरा छोड़ें, इसकी क्या जल्दी है।' यहाँ इतनी दूर कोनेकी धर्मशालामें कदाचित् ही कोई यात्री आता है। चौकीदारके लिये तो सूनी धर्मशाला सायँ-सायँ करती है। कोई रहे तो कुछ तो जनशून्यता कम रहेगी।

'जल्दी तो मुझे है!' सतीशने कहा और मुख फेर लिया। चौकीदार धीरेसे कमरेसे निकल गया। 'तुमने द्वार खोल दिया, यह हीरा भी मेरे पाससे भाग जाना चाहता है।' कुत्तेको उसने एक प्रकारसे दबा रखा था। बेचारा पिल्ला—वह कूँ-कूँ करता और अपनेको छुड़ा लेनेके प्रयत्नमें था।

'उसे छोड़ दो, सम्भव है उसे शौचकी आवश्यकता हो या वह केवल मेरे पास आना चाहता हो। वह शीघ्र तुम्हारे पास लौट आयेगा।' रमाकान्तने पासके आलेपर कुछ देखा। वह उधर ही बढ़ा। 'मुझे कई दिनोंसे तुम्हारी आवश्यकता है। बड़ी कठिनतासे तुम्हें पा सका हूँ। केवल कुछ समयके लिये मेरे साथ चलो!'

'तुम इसे ले जा सकते हो। या फिर यह जहन्नुम जाय।' कुत्तेको उसने फेंक दिया और झपटकर आलेसे

छोटी नारंगी रंगकी शीशी उठा ली। 'मुझे क्षमा करो! मैं कहीं नहीं जाऊँगा।'

'मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं। अपनी शीशीका उपयोग तुम जैसे अभी कर सकते हो, वैसे ही सायंकाल भी।' जिस शीशीको सतीशने उठाया था, उसपर लगे लेविलपर लाल स्याहीसे कुछ छपा है। 'विष' होना चाहिये उसे। परीक्षामें अनुत्तीर्ण, माता-पितासे तिरस्कृत छात्र और क्या करेगा। 'तुम जानते हो कि मेरा छोटा भाई केवल तुम्हें मानता है। उसकी आँखें दुःखनेको आयी हैं और वह किसीको कोई ओषधि लगाने नहीं देता।' रमाकान्तने एक बात निकाल ली।

'मैं डॉक्टर नहीं हूँ, वह चाहे जो करे' पर उसे वह छोटा बच्चा स्मरण आया। हँसता, खेलता सुन्दर-सा लड़का। उसकी आँखें दुःखनेको आयी हैं। दोनों हाथोंसे नेत्रोंको मलकर और भी पीड़ा बढ़ा लेता होगा। रोता होगा। हुआ करे—उसे क्या। वह तो मरनेवाला है। संसारमें उसका कोई नहीं। 'मैं कुछ कर नहीं सकता।' उसने कठोरतासे ओष्ठ दबा लिये।

'तुम ऐसा कैसे कर सकते हो। विद्यालयमें किसीकी तनिक-सी चोट, जरा-सा सिर-दर्द तुम सह नहीं सकते थे। तुम्हारा अधिकांश व्यय ओषधियोंपर होता है। वह बच्चा तुम्हें प्रिय है।' रमाकान्तने तनिक भी ध्यान उपेक्षापर नहीं दिया। 'चलो उठो! एक बार उसे देख लो। यदि कुछ न करनेकी इच्छा तुम्हारी होगी तो मैं स्वयं यहाँ या जहाँ कहोगे तुमको पहुँचा दूँगा।' उसने हाथ पकड़ा और मस्तकको सहारा दिया।

'महा असभ्य और उजड्ड है यह।' मन-ही-मन झल्लाया वह। उठकर बैठ गया और घूरने लगा। ऐसे व्यक्तिसे झगड़ना भी आज उसके मनके विपरीत था।

'तुम्हारी चप्पलें सुन्दर हैं। जूता आवश्यक नहीं। मैं नीचे रिक्शा छोड़ आया हूँ।' रमाकान्तने चप्पलें सम्मुख खिसका दीं और हाथ पकड़कर उठा दिया उसे। 'बालोंमें आज बिना कंघी किये भी चलेगा।' दोनों कमरेसे बाहर हुए। द्वार बन्द कर दिया गया और फिर जैसे उनका परस्पर कोई परिचय न हो। चुपचाप दोनों रिक्शेपर बैठ गये।

धर्मशालाका चौकीदार एक बार ध्यानसे उनकी ओर देखता रहा। उसे नवीन आगन्तुककी सफलतापर प्रसन्नता हुई। 'अवश्य जब दोनों लौटेंगे, वे प्रसन्न होंगे।' मन-ही-मन उसने कहा—'मैं उनके लिये एक कमरा और स्वच्छ कर लूँगा तबतक और वे यहाँ एक महीने आनन्दसे रहें तो अच्छा ही है।' गर्मियोंमें पढ़नेवाले सम्पन्न घरोंके लड़के घूमनेकी छुट्टी पाते हैं, इतना इसे पता है।

× × ×

[२]

'हम जानते ही थे कि तू कुछ पढ़ता-लिखता नहीं है।' पिताने समाचारपत्र उसके सम्मुख फेंक दिया। उसमें परीक्षाके उत्तीर्ण छात्रोंके नम्बर निकले हैं। वह स्वयं देख चुका है कि उसका नम्बर नहीं है। 'इधर-उधर मटरगश्तीसे तो पास हुआ नहीं जा सकता।'

'मैं पहले कहती थी न कि इसके लिये रुपये नष्ट न करो।' विमाता पता नहीं क्यों उससे सदा रुष्ट रहती हैं। छोटा था तभी जननी परलोक चली गयीं। एक बार पिताका स्नेह मिला, पर जैसे ही विमाता आयीं, वे भी खिंचे-से रहने लगे। आज सबको उसपर झल्लाहट है। वह कभी घरमें किसीसे खुलकर नहीं बोलता। अवकाशमें भी किसी मित्रके यहाँ ही समय काट लिया करता है। आज तो बोलेगा ही क्या। 'यह आवारा और मूर्ख है, यह बात मैंने तुमसे कितनी बार कही।' विमाताकी बात ठीक ही होगी। मूर्ख न होता तो श्रम करके भी अनुत्तीर्ण क्यों होता। वह अपनी चिन्तामें डूबता ही गया।

'तुम्हें श्रम करना चाहिये था' किसी प्रकार घरसे दृष्टि बचाकर निकल सका तो मार्गमें पण्डितजी मिल गये। सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्होंने कहा 'स्थूल-बुद्धि लड़के भी पर्याप्त श्रमसे सफल होते हैं। पिताका ध्यान तो करना ही चाहिये तुमको।'

'वह स्थूलबुद्धि है, श्रम नहीं करता' सब यही तो कहते हैं। तब यही बात ठीक होगी। विमाता बराबर कहती हैं—'वह मूर्ख है, आवारा है, घमण्डी है।'

कॉलेजके अध्यापक और सहपाठी भी उसे चिढ़ाते ही हैं। 'वह अब पढ़े भी तो सफल नहीं होगा। उसकी किसीको क्या आवश्यकता है। कोई उसे नहीं चाहता। व्यर्थ है उसका जीवन।' मनुष्योंसे दूर हो जाना चाहता था वह। कोई ऐसा स्थान, जहाँ वह चुपचाप रो सके।

नगरके एक कोनेमें वह धर्मशाला आज उसे स्मरण हुई। किसी दिन वह हँसा था उसके निर्मातापर। 'कितना भोंदू होगा यहाँ इसे बनवानेवाला। भला यहाँ कौन आयेगा।' उसने अपने एक साथी मित्रसे कहा था। प्रत्येक तीन वर्षोंपर जब पुरुषोत्तम मासमें यात्री पंचक्रोशीके लिये निकलते हैं, धर्मशाला उनके लिये कितनी उपयोगी है, यह उसे कौन बताये; किंतु आज वही धर्मशाला उसे आश्रय प्रतीत हुई।

हीरा—उसका छोटा कुत्ता, पता नहीं कैसे घरसे उसके साथ हो गया। एक दरी उसे खरीदनी पड़ी थी और एक लोटा। जब मरना ही है तो सुविधासे, एकान्त देखकर व्यवस्था करनी चाहिये। अनेक योजनाएँ आयीं मनमें; सबमें कुछ-न-कुछ आशंका थी। धर्मशालामें कमरा बन्द रहेगा। विषको गलेसे नीचे उतारकर सो रहेगा वह। कुत्ता—पहले उसने उसे भगा देना चाहा।

'यह रहेगा तो पिताजीको सूचना मिल जायगी। विमाताको सन्तोष हो जायगा।' कुत्तेके गलेके पट्टेपर उसने चाकूकी नोकसे घरका नाम-पता कुरेद लिया।

'कोई मुझे ढूँढ़ने न निकला होगा।' धर्मशालाके कमरेमें उसे पता नहीं क्या-क्या सूझता है। 'किसीको मेरे लिये क्यों चिन्ता होगी?' उसने शीशीकी ओर देखा—'एक नींद ले लूँ और फिर·······।' आज जेब खाली हो गयी थी। अब भूख लगे, ऐसी स्थिति ही क्यों आयेगी।

'आज सात दिन हो गये। चौकीदार कमरा खाली करनेको कहने आया है।' कोई द्वार खटखटा रहा था। 'यह तो रमाकान्त है। होने दो, मैं अब नहीं उठूँगा। किसीसे अब नहीं मिलना है। दुष्ट कहींका, आज सात दिनपर आया है। पीटने दो द्वार!' कुत्ता भी बोलने लगा था। उसे उसने पकड़ लिया। यह मूक पशु भी दूसरेसे स्नेह करे, आज उसे यह सह्य नहीं।

× × ×

[३]

'मैं दवा नहीं डालूँगा। मेरी आँख ठीक नहीं होगी।' वह पाँच वर्षका बालक गोदमें छटपटा रहा था। अपना सिर और हाथ हिलाता तथा रोता जाता था।

'तुम अच्छे लड़के हो! तुम्हारी आँखें अच्छी हो जायँगी!' सतीशने बच्चेको गोदमें ले लिया था। बच्चेको देखते ही उसकी उदासीनता कम हो गयी थी।

'इतनी बार तो दवा लगायी!' बालकके स्वरमें झल्लाहट घट रही थी।

'मैं अच्छी दवा डालूँगा!' उसने पुचकारा। किसी प्रकार दवा डाली जा सकी।

'तुम जाओ मत! मैं तुम्हारे साथ चलूँगा!' लड़का दोनों हाथ उसके गलेमें लपेटकर चिपक गया था। वह नेत्र खोल नहीं पाता था।

'मैं कहीं नहीं जाता हूँ!' आश्वासन देना आवश्यक था।

'तुम स्नान करो! भोजनका समय हो चुका है!' रमाकान्तने धोती और तौलिया स्नानघरमें रखनेके पश्चात् कहा। 'अब आज तो दूसरी बार दवा तुम्हें ही लगानी है!'

'गलेसे लिपटा यह बालक, उसका यह मित्र और बालकके माता-पिता, सभी उससे स्नेह करते हैं। सभी उसका सत्कार करना चाहते हैं। क्या यह सत्कार सच्चा नहीं है?' वह चुपचाप मित्रके मुखकी ओर देखता रहा। बच्चेको पृथक् करना सरल नहीं था; परंतु समझा-बुझाकर स्नान भी करना ही था।

'तुम कितने निपुण हो!' मित्रने भोजन करते समय उससे कहा, 'कितने पीड़ितोंका परित्राण करनेमें तुम समर्थ हो सकते हो यदि साहस करो! आज ऐसे ही युवकोंकी जनसेवक-संस्थाको आवश्यकता है!' यह निश्चितप्राय था कि सतीश अब आगे पढ़ नहीं सकेगा। उसके पिता आर्थिक सहायता देनेको तत्पर न होंगे। स्वयं रमाकान्तकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं कि वह

इसका भार वहन कर सके।

'महीनोंके पश्चात् आज मैं प्रसन्न हूँ!' सतीशने मित्रकी ओर देखा। 'तुम्हारी योजनापर विचार करनेको जी चाहता है!'

'माधवके नेत्र अच्छे होनेतक विचार करनेका पूरा समय है तुम्हारे पास।' रमाकान्त हँसते हुए बोले—

'अपने कमरेकी चाभी मुझे दे दो! मैं उसे खोल आऊँगा! तुम्हारी नयी दरी मुझे पसन्द है। उस मनहूस शीशीको जिसे तुम दरीके नीचे छिपा आये हो, अब तुम पा नहीं सकते!'

'आवश्यकता हुई तो दूकानोंमें वह फिर मिल जायगी!' सतीश हँस पड़ा। 'मैं सायंकाल फिर आ जाऊँगा और शीशी तुम्हें दे दूँगा।' वह कैसे बराबर कई दिनों यहीं टिके रहनेका निमन्त्रण स्वीकार कर ले!

'तुम माधवको अधिक रुलाना पसन्द नहीं कर सकते!' रमाकान्तका आग्रह सकारण था। 'चाभी मुझे दो! मैं तुम्हारी दरीके लिये झगड़ूँगा नहीं!' सतीश भी समझता है कि अब उसके लिये धर्मशाला जाना आवश्यक नहीं।

× × ×

[४]

'पिताजीने मुझे बुलाया है!' सतीशको आश्चर्य था कि स्वयं विमाता उसे लेने आयी थीं। वह अपने मित्रसे विदा हो रहा था। 'उनका आग्रह है कि मैं पुनः परीक्षामें बैठूँ।'

'तुम घर जाओ!' रमाकान्तने उसे समझाया। 'पिताजीको तुम्हें सन्तुष्ट करना ही चाहिये!'

'वे इस प्रकार कभी मुझे पत्र न लिखते!' स्वयं सतीशको बार-बार इधर घरका स्मरण हुआ है।

'तुमने कभी उनको या माताजीको प्रसन्न करनेका प्रयत्न भी किया?'

'कदाचित् कभी नहीं!' अब उसे स्मरण आ रहा है, जब यह नवीन माताजी आयी थीं। उन्होंने उसे गोदमें लेकर पुचकारा था। भाग गया था वह। बराबर वह मातासे पृथक् रहता था। पितासे भी पता नहीं क्यों उसे चिढ़ हो गयी थी। धीरे-धीरे वह उनकी अवज्ञा करने लगा था।

'लेकिन मैं घरसे चला गया और किसीने मेरी कोई खोज-खबर नहीं ली!' सतीशको यही बात सबसे अधिक खटकती है। जितना शारीरिक कष्ट उसे उन सात दिनोंमें मिला है, उससे कहीं अधिक मानसिक कष्ट भोगता रहा वह।

'तुमने स्वयं द्वार बन्द कर लिये और चाहते हो कि लोग तुम्हारे पास आयें!' रमाकान्तने संकेतसे समझाया। पता लगानेका कोई सूत्र सतीशने छोड़ा ही कहाँ था। यदि अचानक उनके नौकरने घरसे कामपर आते समय उसे धर्मशालामें जाते न देख लिया होता!

'रमा बेटा! तू अब इसे छुट्टी दे दे!' सतीशकी विमाता ऊपर आ गयी थीं। 'सतीश, चल भैया! अब हम कुछ न कहेंगे! तू माता-पितासे इतना अप्रसन्न हो जायगा, यह तो हमने कभी सोचा ही नहीं था। तेरी इच्छा हो तो फिर परीक्षा देना, न हो तो कोई बात नहीं!' जैसे सतीश छोटा बच्चा ही हो अभी। वे उसके सिरपर पीछे खड़ी होकर हाथ फेर रही थीं।

'यह पिताको प्रसन्न नहीं करेगा तो जगत्पिता इसपर प्रसन्न रहें, ऐसी आशा ही कैसे कर सकता है।' सतीश इधर धर्मके प्रति आस्था खो बैठा है। रमाकान्तको यह बात बहुत खटकती है।

'तू अपनी तोतारटन्त रहने दे!' सतीशने कृत्रिम रोष दिखाया।

'तुम दोनों लड़ो मत!' माता तो माता ही है 'अभी तो घर चलो!' उन्होंने दोनों मित्रोंको आमन्त्रित किया!

'चलो, मैं तुम्हें पहुँचा आऊँ!' रमाकान्त उठे। 'तुमने पिताके लिये धर्मशाला पहुँचनेका मार्ग बन्द कर दिया था और परम पिताके लिये हृदयका द्वार अबतक बन्द कर रखा है!' जैसे कोई चेतावनी दी जा रही हो।

'पिताका द्वार पुत्रके लिये सदा खुला रहता है!' रमाकान्तकी माता आ रही थीं! उन्होंने ही कहा था।

'बहन, मैं रमाको लिये जा रही हूँ!' सतीशकी माताने अनुमति ली।

'मैं धर्मशालाके कमरेका द्वार बन्द करके बैठने तो जा नहीं रहा हूँ।' हँसकर रमाकान्तने सबको हँसा दिया।

× × ×

[५]

'यह सब कबतक समाप्त होगा!' अखण्ड कीर्तन-भवनको देखकर सतीशचन्द्रजीने एक ही प्रश्न पूछा था। कहीं कथा, कहीं कीर्तन, कहीं पाठ। एकान्त शान्त झोपड़ियोंमें सीधे सरल साधक मौन रहते हैं, साधारण भोजन करते हैं, जप, पाठ, पूजामें ही उनका समय व्यतीत होता है। भवनके व्यवस्थापकने इतने प्रसिद्ध नेताके आगमनपर हर्ष प्रकट किया। उनका स्वागत हुआ। सब स्थान उन्हें दिखाये गये। पूरी व्यवस्था समझायी गयी। 'यहाँके लोग हैं तो अच्छे, पर व्यर्थ समय नष्ट करते हैं। समाजकी सेवामें लगें तो देशका कुछ लाभ भी हो।'

'जीवनमें शान्ति न हो तो समाजको शान्ति दी नहीं जा सकती!' व्यवस्थापक अपने अतिथिसे विवाद नहीं करना चाहते थे। सतीशने उनके प्रतिवादपर ध्यान नहीं दिया।

'जीवनमें शान्ति?' वहाँसे आनेपर भी उसके मनमें यह वाक्य बराबर खटकता है। उसने लोगोंके लिये कष्ट उठाया, जेल गया, पीटा गया और अनेक यातनाओंके पश्चात् अब उसे नेतृत्व प्राप्त हुआ। अधिकार मिला उसे। अब लोग उसकी समालोचना करते हैं। उसे स्वेच्छाचारी बताया जाता है। उसके पक्षमें बहुमतको अल्पमतमें बदलनेका प्रयत्न करते हैं लोग। कहाँतक वह लोगोंके लिये ही कष्ट सहे। वह भी मनुष्य है, उसकी भी सुविधा है, उसे भी सुख चाहिये।

'सुख—सुख कहाँ है?' कितना अशान्त, कितना चिन्तित रहना पड़ता है उसे। पहले लोग उसे चाहते थे, उससे प्रेम करते थे। अब लोग उसके विरोधी होने लगे हैं। 'शान्ति—ईश्वर?' पर ईश्वर होता तो क्या वह उस परीक्षामें अनुत्तीर्ण हो गया होता! कितनी प्रार्थना की थी उसने। कितना रोया था। हनुमान्‌जीको लड्डू चढ़ाये, शंकरजीको दूध चढ़ाया, पाठ किये और जप किया। सब व्यर्थ—वह उत्तीर्ण नहीं हुआ। 'यह पूजा-पाठ कुछ नहीं। कोई ईश्वर नहीं!' एक प्रतिक्रिया उठ खड़ी हुई उसी दिन उसके मनमें।

'यदि उस समय उत्तीर्ण हो गया होता? आज किसीके यहाँ नौकरी करता!' आज उसे अपनी स्थितिपर सहसा आश्चर्य हुआ। इस उच्चपदको पानेमें उसका अनुत्तीर्ण होना और पिताके आग्रहपर भी फिर परीक्षा न देना कारण हुआ। उसी असफलताने तो सेवा-मार्गमें प्रवृत्त किया। 'क्या भगवान् हैं?' आज फिर उसका हृदय पूछ रहा है। 'मेरी वह प्रार्थना सुनी गयी थी? मेरी पूजा स्वीकृत हुई थी?' उसे लगता है, उस अज्ञात शक्तिने उसे कितना बड़ा वरदान दिया। 'मैं मूर्ख हूँ! मैं कृतघ्न हूँ!'

'कहाँ हैं भगवान्?' पर उसका हृदय आज बदल गया है। 'भगवान् कहाँ नहीं हैं?' स्वयं अपने व्याख्यानोंमें वह यही तो बार-बार कहता है। 'किनपर शासन करता है वह? किनपर अधिकार प्रकट करता है?'

'पिताका द्वार पुत्रके लिये सदा खुला रहता है!' रमाकान्तकी माताके शब्द उसे स्मरण आते हैं और स्मरण आते हैं रमाकान्तके शब्द—परमपिताके लिये द्वार खोलो! तुम अपने कुत्तेके भागनेके डरसे द्वार बन्द करोगे तो मित्र आयेंगे कैसे? हृदयके द्वार खोलो! सेवा, स्नेह दो दूसरोंको! प्रभुके लिये उन्मुक्त करो उसे! आनन्द और शान्ति उसमें तभी आयेंगे!'

'मैंने द्वार बन्द कर दिया अधिकार लेकर!' वह सोचता है 'दुःख, अशान्ति धर्मशालाके बन्द कमरेमें भी तो मुझे मिले थे! द्वार खोलना है। जगत्पिता! तू मेरे हृदयमें आ और मुझे अपनी मंगल शान्तिमें आने दे!' देशका एक उच्च नेता इस प्रकार रो सकता है, यह उसका निजी मन्त्री आश्चर्यसे देखता रहा; किंतु आज उसे किसीकी चिन्ता नहीं थी। द्वार उन्मुक्त हो गया था और शीतल वायुकी भाँति सुखद अनुभूति वहाँ व्याप्त हो रही थी।

धर्मका स्वरूप

[महाभारत-प्रसंग]

(श्रीअमृतलालजी गुप्ता)

'महाभारत' में थोड़ा दुर्योधनके सेनापतियोंके नामपर ध्यान दीजिये, उसके प्रथम सेनापति थे भीष्म। जब उन्होंने शरशय्या ले ली, तो द्रोणाचार्य सेनापति बने। द्रोणाचार्यके बाद कर्ण और कर्णके पश्चात् शल्य। ये चारों जो एक-के बाद-एक दुर्योधनके सेनापति बने, कितने महान् व्यक्ति थे। बाल-ब्रह्मचारी भीष्म, महान् तपस्वी शस्त्रविद् द्रोणाचार्य, महान् दानी कर्ण और महान् पुण्याभिमानी शल्य। तो ब्रह्मचर्य, तप, दान और पुण्याभिमान—ये चार सेनापति हैं दुर्योधनके और वे चारों मारे गये! ऐसा क्यों? दुर्योधनका साथ देते वक्त उक्त चारों सेनापतियोंको विचार करना था कि हम किसका साथ दे रहे हैं? दुर्योधन अधर्मका प्रतीक है और उसके ब्रह्मचर्य, तप, दान और पुण्याभिमान—ये चार सेनापति उस अधर्मको जितानेके लिये लड़ाई लड़ रहे हैं! अब यह सोचनेकी बात है कि ब्रह्मचर्य, तप, दान और पुण्याभिमानका संरक्षण प्राप्त करनेसे अधर्म अमर हो जायगा अथवा अधर्मका साथ देनेके कारण ब्रह्मचर्य, तप, दान और पुण्याभिमान मारे जायँगे। दुर्योधन पहले तर्कको मानता था, वह सोचता था कि अधर्मका संरक्षण पाकर वह अमर हो जायगा।

क्योंकि भीष्मको वरदान था कि वे जब चाहेंगे, तभी मरेंगे। इसलिये दुर्योधनने सोचा कि हमारा सेनापति कैसा बढ़िया है, जो इच्छामृत्यु प्राप्त है, जो किसीके मारनेसे नहीं मरेगा और द्रोणाचार्य कैसे हैं? वे मृत्युको तब प्राप्त होंगे, जब शस्त्रका त्याग कर देंगे। शस्त्रका त्याग भी तभी करेंगे, जब उनके पुत्र अश्वत्थामाकी मृत्यु होगी और अश्वत्थामा तो कभी मरेंगे ही नहीं; क्योंकि वे अमर हैं, इसलिये द्रोणाचार्य भी अमर रहेंगे। कर्ण तो अमर है ही; क्योंकि कवच-कुण्डलके साथ उसका जन्म हुआ है और जबतक उसके कवच-कुण्डल सुरक्षित हैं, उसे कोई मार नहीं सकता। अब रहे शल्य। शल्यको श्रीकृष्णकी बराबरीका ही सारथि माना गया तो जैसे श्रीकृष्ण अमर हैं, उसी प्रकार उन्हींके समान कुशल सारथि होनेके कारण शल्यको भी दुर्योधनने अमर मान लिया। पर अन्ततोगत्वा दुर्योधनका सारा गणित धरा-का-धरा रह गया। जिन चारों सेनापतियोंको उसने अमर माना था, वे सब-के-सब मारे गये। इसपर प्रश्न उठता है कि धर्म अमर है या मृत्यु? इसका उत्तर है कि धर्म तो अमर ही है, पर जो धर्म अधर्मको अमर बनानेके लिये सचेष्ट हो, वह धर्म है क्या? यही प्रश्न है।

कौरवपक्षके भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य सभी मारे जाते हैं। अन्तमें जब अकेला दुर्योधन बचा रहता है तो गान्धारी उससे कहती है—पुत्र! सब तो मारे गये, पर मैं तुम्हें नहीं मरने दूँगी। जब गान्धारीका धृतराष्ट्रसे विवाह हुआ तो गान्धारीने निश्चय किया कि यदि मेरे पतिदेव अन्धे हैं तो फिर मैं भी अपनी दृष्टिका उपयोग नहीं करूँगी। इसलिये उसने अपनी आँखोंपर पट्टी बाँध ली, लोगोंने कहा 'धन्य है गान्धारी, जिसने आँखोंके रहते हुए भी उनपर पट्टी बाँधकर पातिव्रत-धर्मका पालन किया।'

गान्धारी वास्तवमें मूर्तिमयी ममता है। केवल गान्धारी ही पट्टी नहीं बाँधती, अपितु हम जितने भी ममतावाले हैं, सब-के-सब अपनी आँखोंपर पट्टी बाँधे हुए हैं। वे कहते हैं कि चाहे जो कुछ भी हो, लेकिन हमें अपने प्रियजनोंकी विकृतियोंके बारेमें कुछ नहीं देखना है। धृतराष्ट्र और गान्धारीका पक्ष यह है कि दुर्योधन, दु:शासन और हमारे सौ बेटे चाहे कितने भी बुरे क्यों न हों, पर हैं तो हमारे बेटे और यह केवल महाभारतका ही सत्य नहीं है, बल्कि सत्य तो हमारे और आपके जीवनका भी है। हमने निर्णय लिया है कि हमारा बेटा बुरा भी है, तब भी हम आँखोंपर पट्टी बाँधे रहेंगे, उसकी बुराईपर दृष्टि नहीं डालेंगे। गीतामें भगवान्

श्रीकृष्णका पक्ष यह है कि जहाँपर विकृति है, वहाँपर कोई भी सम्बन्ध क्यों न हो, उसे तो नष्ट कर ही देना चाहिये; क्योंकि विकृति-तो-विकृति ही है।

गान्धारीके मनमें गर्व है कि मैं तो पतिव्रता हूँ। मैं अपने पुत्रको मरने नहीं दूँगी। यही मोह है। मोह कितना बलवान् है! सती गान्धारी इसी मोहके आक्रमणसे नहीं बचीं। उनको विश्वास हो गया कि वे अपने पातिव्रत्यके बलपर दुर्योधनको मरनेसे बचा लेंगी।

गान्धारी भी अपने धर्मके द्वारा यही करना चाहती हैं, जो संसारमें कभी नहीं हुआ। वे दुर्योधनसे कहती हैं—'बेटा! तू वस्त्ररहित होकर मेरे सामने आ जाना, मैं अपनी आँखोंसे पट्टी खोलकर तुझे अमर बना दूँगी!' दुर्योधन तो आनन्दमें डूब गया, पर जब यह समाचार पाण्डवोंके खेमेमें पहुँचा, तो वहाँ मायूसी छा गयी। सोचने लगे कि जब गान्धारी-जैसी पतिव्रताने ऐसा व्रत ले लिया है, तब क्या होगा? पर श्रीकृष्ण मुसकराकर बोले—अगर दुर्योधन वस्त्ररहित होना जानता होता और गान्धारी आँखोंकी पट्टी खोलना जानती होतीं, तो यह अनर्थ ही क्यों होता? दुर्योधन नग्न होना कहाँसे जाने, वह तो दूसरोंको नग्न करना जानता है। उसने द्रौपदीको नग्न करनेकी चेष्टा की, इसीसे महाभारतकी लड़ाई हुई। स्वयं नग्न होनेका तात्पर्य है अपने दोष देखना और उसे स्वच्छ करनेकी चेष्टा करना तथा दूसरोंको नग्न करनेका अर्थ है—दूसरोंके दोष देखना, दूसरोंको नीचा दिखानेकी चेष्टा करना। दुर्योधनमें आत्मदोष-दर्शनकी प्रवृत्ति ही नहीं है, वह केवल परदोष-दर्शन ही करता है। अतः वह नग्न कैसे हो सकेगा? उधर गान्धारी पतिव्रता तो हैं, पर उन्हें आँखोंकी पट्टी खोलना कहाँ आता है? यह सही है कि उनकी आँखोंमें ऐसी शक्ति है कि चाहें तो वे किसीको भस्म कर दें और चाहें तो किसीके शरीरको वज्र बना दें, पर वे आँखोंको खोलना जानें तब न? यदि जानती होतीं तो जिस समय भरी सभामें दुर्योधन द्रौपदीको नग्न करवा रहा था, वे धमकी दे सकती थीं कि दुर्योधन! यदि तुम ऐसा अन्याय करोगे तो मैं आँखोंकी पट्टी खोल तुम्हें भस्म कर दूँगी। उससे सारा पाप ही समाप्त हो जाता। पर यह कैसी विडम्बना है कि गान्धारी पापको अमर बनानेके लिये आँखोंकी पट्टी खोलनेका व्रत लेती हैं! अपने पातिव्रत्यके बलपर उसे अमर बनानेपर तुली हुई हैं, जो दूसरोंके पातिव्रत्यको नष्ट करनेपर तुला रहता है! पर क्या वे अपनी इच्छामें सफल हो पायीं?

धर्मके साक्षात् घनीभूतरूप श्रीकृष्णके रहते क्या अधर्म अमर बन सकता था? विजय तो धर्मकी ही होनी थी। 'महाभारत' घोषणा करता है—'**यतो धर्मस्ततो जयः।**' दुर्योधन भी सोचता था कि जीत उसकी होगी; क्योंकि ब्रह्मचर्य, तप, दान, पुण्य और पातिव्रत्यरूप धर्म उसीकी तरफ है। पर 'महाभारत' में एक वाक्य और कह दिया गया—'**यतः कृष्णस्ततो धर्मः।**' जिधर कृष्ण हैं, उधर धर्म है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिधर कृष्ण, उधर धर्म और जिधर धर्म, उधर विजय; पर विजय तो कौरव पक्षकी ओर दिखायी पड़ रही है—दुर्योधन नग्न होकर अपनी माता गान्धारीके पास अमर बननेके लिये जा रहा है, पर क्या गान्धारी दुर्योधनको अमर बना पायीं? किंवदन्ती है कि श्रीकृष्णकी प्रेरणासे नारद दुर्योधनके सामने आ जाते हैं। वह सारे खिड़की-दरवाजोंको बन्दकर नग्न होकर अपनी माँके पास सावधानीसे जा रहा है कि कहीं कोई उसे देख न ले। जब वह नारदको देखता है तो लजाकर बैठ जाता है। अब, सन्तके सामने कहाँ उसे अपना दोष प्रकट करना चाहिये था और कहाँ लजाकर छिपनेकी चेष्टा करता है। नारद मुसकरा पड़े! बोले—भलेमानुस! जब मेरे सामने इतना संकोच कर रहे हो, तब माँके सामने क्या होगा, कुछ तो कपड़ा पहन लो, क्या बढ़िया सलाह है, यह एक व्यावहारिक सलाह है—कुछ ढँक लेना और कुछ प्रकट करना। नारदकी ऐसी सलाह दुर्योधनके स्वभावके अनुकूल ही थी और दुर्योधन ही क्यों, वह हम सबकी प्रवृत्तिके अनुकूल बात है तो जब दुर्योधन कमरमें कपड़ा लपेटकर माँके पास पहुँचा, माँने आँखोंकी पट्टी खोलकर उसकी ओर देख लिया।

दुर्योधनका सारा शरीर वज्र हो गया, केवल कमर ही जिसपर कपड़ा लिपटा था, दुर्बल रह गयी। श्रीकृष्णने मुसकराकर कहा—देखो, पतिव्रताने अधर्मको अमर बनाना चाहा, पर अधर्म तो अमर हुआ नहीं, बल्कि पतिव्रताने अधर्मके मरनेका उपाय जरूर बता दिया। पहले तो सोचना पड़ता कि दुर्योधनको मारनेके लिये उसपर कहाँ वार किया जाय, पर अब तो पता चल गया कि कमरपर ही वार करना होगा।

तो हमारा ब्रह्मचर्य, हमारा तप, हमारा दान और हमारा पुण्य यदि केवल मोह और अहंकारकी सृष्टिके लिये हो, तो वह धर्म नहीं, अधर्म है और ऐसे अधर्मका शीघ्र नष्ट होना ही उचित है। रामायणमें भी हम यही बात देखते हैं। विभीषणकी तपस्या, उनकी साधना रावणको ही बल प्रदान करती थी। जबतक उन्होंने रावण और कुम्भकर्णसे नाता तोड़कर हनुमान्‌जीके साथ नाता नहीं जोड़ लिया, तबतक उनका धर्म अधर्मको ही पुष्ट करता था। धर्मकी कसौटी यह है कि जीवनमें वैराग्य आना चाहिये—**'धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।'** (रा०च०मा० ३।१६।१) धर्मसे जब वैराग्य आये तो समझ लीजिये हनुमान्‌जी आ गये और यदि धर्म करते-करते मोह और अहंकार आये, तब समझ लेना चाहिये कि वह धर्म नहीं, घोर अधर्म है।

साधक कमलाकान्त

(श्रीरामलालजी)

शस्यश्यामला बंगभूमिके निवासियोंके हृदयमें भगवती कालीकी उपासनाकी सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती है। महात्मा रामप्रसाद सेन, साधक कमलाकान्त और श्रीरामकृष्ण परमहंसने शक्तिकी उपासना-समृद्धि बढ़ानेमें असाधारण योगदान दिया। तीनों-के-तीनोंने जगदीश्वरीके चरण-कमलोंमें मन संस्थितकर त्राणकी याचना की। कमलाकान्तने निवेदन किया—

उमे! त्राण दे मा शिवे! त्राण दे।
तृषित चातक मत निरखि नव घन तव चरण गो।
आमि दुराचारी, शरण तोमारि, निस्तार ए घोर भवे॥
तुमि जननी, जनम-हारिणी, सृष्टि-स्थिति-संहारिणी।
हे कङ्काले! शशधरभाले! गिरिजा भवानी भवे॥
जया प्रचण्डा शमन-दलनी 'कमलाकान्त' कृतान्तभये।
त्राहि महेशि! विगलितकेशि, तरि भवराणि, भवे॥

'हे माँ पार्वती! उमादेवि! आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं प्याससे विकल चातककी तरह आपके चरणरूप नवजलदकी ओर आशापूर्ण दृष्टिसे देखता हूँ। मैं दुराचारी पापी हूँ, फिर भी आपके शरणागत हूँ; इस भीषण संसारसे आप मुझे उबार लीजिये। हे माँ! आप मोक्षदायिनी हैं, आप सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली महाशक्ति हैं। आप मुण्डोंकी माला धारण करनेवाली हैं, आपके भालमें बालचन्द्र शोभित है; आप पार्वती हैं, भवानी हैं, भगवान् शिवकी अभिन्न आत्मा हैं; आप जया हैं, आप विकरालरूपधारिणी—प्रचण्डा हैं। आप ही कालका भी संहार करनेवाली महामाया हैं, मुझे यमके त्राससे उबार लीजिये। हे खुले केशोंवालीं करालवदना! शिवकी हृदयेश्वरी! मैं मृत्युरूपी संसार-सागरसे आपकी कृपासे पार उतरनेमें समर्थ हूँ, मेरी रक्षा कीजिये।' साधक कमलाकान्तने जगदीश्वरीके चरणोंमें अपने हृदयकी भक्ति उँड़ेलकर तथा उनकी आराधनाकर भवसागरमें मृत्युभयसे त्राण पाया।

साधक कमलाकान्तका जन्म बर्दवान जनपदमें भगवती गंगाके तटपर स्थित अम्बिका कालना ग्राममें बंगीय संवत् ११७० में एक ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था। पाँच सालकी ही अवस्थामें उन्हें पिता छोड़कर परलोक चले गये। कमलाकान्त दो भाई थे। माँने बड़े स्नेहसे उनका पालन-पोषण किया। उनकी जीविका

यजमानी वृत्तिसे चलती थी। भू-सम्पत्तिका अभाव था। अम्बिका कालनासे जीवन-निर्वाहके लिये माँके साथ कमलाकान्त अपने मामा नारायणचन्द्र भट्टाचार्यके घर चान्नाग्राम चले आये। चान्नामें ही उनकी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई। अपनी माँके चरणोंमें साधक कमलाकान्त बड़ी श्रद्धा-निष्ठा रखते थे। वे उनकी प्रत्येक आज्ञाका पालन बड़ी तत्परतासे करते थे। उन्होंने एक बार बाल्यकालमें ही माँके प्रति निवेदन किया था—'माँ! आप मेरे लिये साक्षात् आनन्दमयी जगदम्बा हैं। मैं उन्हें और आपको सर्वथा अभिन्न मानता हूँ।'

उन्होंने माँकी आज्ञाके अनुसार लाकुडी ग्रामके एक सुपात्र ब्राह्मणकी कन्याका पाणिग्रहणकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। वे जगदम्बाकी साधनामें लग गये। चान्नाग्राम खड्गेश्वरी नदीके तटपर स्थित है। उस ग्राममें विशालाक्षी देवीके मन्दिरमें बैठकर वे जगदम्बाके चरणकमलोंमें निवेदन किया करते थे—'माँ! आपके चरणाम्बुज देख-देखकर मैं प्राणधारण करता हूँ। इस संसारमें आपको छोड़कर कोई दूसरा अपना है ही नहीं।' उनकी देवीके प्रति संस्तुति है—

अनुपम रूप, अनूप श्यामातनु हेरिये नयन जुड़ाय।
सजल कादम्बिनी जिनिये कुन्तल, तार माझे सौदामिनी खेलाय॥
अञ्जन अधरे अतसी मुकुता फल, नीललोहित पद्म भ्रमे अलिकुल धाय।
क्षणे-क्षण हास्य कटाक्ष-शरे शिवेर मन सहजे भुलाय॥
मृगाङ्क अरुण चरण-नख-किरणे, रक्तोत्पल जिनि पदतल ताय।
कमलाकान्त अन्त ना जाने गुण श्रीचरण, मानव कि पाय॥

'कालीका रूप अनुपम है। श्यामाके अनूप शरीरको देखकर नेत्र शीतल होते हैं। उनके पूरे शरीरको वेष्टित किये हुए काले-काले केश-जालमें उनका रूप ऐसा दीख पड़ता है, मानो सजल मेघमालामें दामिनी चमक रही है। उनके अधरकी लालिमा तीसीके फूल और मुक्ताफलकी शोभा धारण करती है; नीले और लाल कमल समझकर भ्रमर-समूह अधरोंकी ओर दौड़ पड़ता है। क्षण-क्षण निरन्तर श्यामाकी मन्द-मन्द मुसकान और कटाक्ष-शरसे (मनसिजको भी भस्म करनेवाले) शिवका मन अनायास ही मुग्ध हो उठता है। अरुणवर्णके नखोंकी किरणोंकी चन्द्रमाके समान शुभ्र ज्योतिसे आवेष्टित जगदीश्वरीके पदतल ऐसे दीख पड़ते हैं, मानो (स्वच्छ जलधारामें) लाल वर्णके कमल विकसित हों। कमलाकान्तका कथन है कि भगवतीके श्रीचरणोंके गुण-महत्त्वका मर्म स्वयं कमलाकान्त (विष्णु) भी नहीं समझते; तब भला, साधारण मनुष्य मैं क्या समझ सकता हूँ।'

अपनी माँके आग्रहसे वे सपरिवार आर्थिक संकट दूर करनेके लिये अम्बिका कालना चले आये। उस गाँवमें उनके धनी-मानी शिष्य रहते थे। थोड़े समयके बाद माँ रोगग्रस्त हो गयीं। माँने समझाया कि 'मेरे देहावसानके बाद तुम्हें पूरे परिवारके प्रतिपालनमें लगे रहना चाहिये; वैराग्य नहीं ग्रहण करना चाहिये।' उन्होंने माँकी इस आज्ञाका जीवनभर पालन किया। माँकी मृत्युके बाद वे पुनः चान्ना चले आये। वहाँ उनकी पत्नीका भी देहान्त हो गया। उन्होंने घरका प्रबन्ध भाईके हाथमें सौंप दिया और स्वयं देवीकी उपासनामें लग गये; पर माँकी आज्ञाके अनुसार उन्होंने कभी घरका त्याग नहीं किया। उन्होंने देवीके चरणोंमें निवेदन किया—

आमारके आछे, करुणामयी!
ओ पदे विपद नाशे, नितान्त भरसा ओइ।
कखन-कखन मने करि, धन-परिजन कोथा रवे॥
कोथारवे, से भाव थाकये कै। मजिये विषय-विषे,
दिन गेल रिपु-वशे, आपनारि क्रिया दोषे॥
अशेष यन्त्रणा सइ।
सुकृति ये जन, से साधने पावे श्रीचरण,
अकृति अधम आमि, कि गति तारिणी वइ।
कमलाकान्तेर आश, हवे तव पदे दास,
किंतु मम मन अवश, आमि त तादृश नइ॥

'हे करुणामयी माँ! यहाँ—इस जगत्में मेरा कौन है? आपके चरणोंमें ही मेरी विपत्तिका नाश होगा;

मुझे तो एकमात्र आपके चरणोंका ही भरोसा है। कभी-कभी यह बात मनमें आती है कि धन और परिवारके लोग रहेंगे क्या? क्या वे इसी तरह सदा बने रहेंगे? विषय-विषमें अनुरक्त होनेके नाते मेरे दिन काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओंकी अधीनतामें बीत गये; मैं अपने ही कर्मोंके दोषसे सारी यातनाएँ सहता हूँ। जो पुण्यात्मा है, वह साधनके द्वारा आपके श्रीचरणकी प्राप्ति कर पाता है; किंतु मैं तो पापी और अधम हूँ, साधनहीन हूँ। मेरा तो आपको छोड़कर कोई दूसरा है ही नहीं। मैं तो यही आशा लगाकर बैठा हूँ कि मैं आपके चरणोंका दास बनूँगा; परंतु मनपर मेरा अधिकार नहीं है। वह अत्यन्त चंचल है। मैं आपका दास भी बननेयोग्य नहीं हूँ।'

महात्मा कमलाकान्तका सम्पर्क चार व्यक्तियोंके लिये बड़े महत्त्वका कहा जाता है। वे थे विश्वेश्वर डाकू, शिष्य केनाराम चट्टोपाध्याय और बर्दवानके महाराजा तेजचाँद तथा उनके पुत्र युवराज प्रतापचाँद। साधक कमलाकान्तके चरणदेशमें उन चारोंकी प्रणति अपने-अपने ढंगसे निराली थी। विश्वेश्वर—विशु प्रसिद्ध डाकू था। एक समयकी बात है। कमलाकान्त गैरिक परिधान धारणकर खड्गेश्वरी नदी पारकर चान्नासे सात-आठ कोसकी दूरीपर स्थित अमरारगढ़ स्थानपर अपने शिष्य केनारामसे मिलने जा रहे थे। कई गाँवोंको पारकर ओड़ग्रामके निकट पहुँचते ही उन्होंने देखा कि कई लोग उनका पीछा कर रहे हैं। शाम हो गयी थी। पश्चिममें लालिमा थी। सूर्य अस्ताचलको जा चुके थे। वे तनिक भी भयभीत नहीं हुए। वे गीत गाकर जगज्जननीका स्मरण करने लगे—

आर किछु नाइ श्यामा, तोमार केवल दुटि चरण रांगा।
शुनि ताओ नियेछेन त्रिपुरारी, अतेव हलेम साहस भांगा॥
ज्ञातिबन्धु सुत-दारा, सुखेर समय सबाइ तारा।
विपद-काले केउ कारो नय, घरवाड़ी ओड़गाँयेर डांगा॥
निज गुणे यदि राख, करुणा-नयने देख,
नइले जप करे ये तोमाय, पाओया से सब कथा भूतेर सांगा।
कमलाकान्तेर कथा, मारे बलि मनेर व्यथा,
जपेर माला, झूलि, काँथा, जपेर घरे रइल टांगा॥

'हे श्यामा! आपके लाल-लाल कोमल दोनों चरणोंके सिवा मेरे लिये और कुछ भी नहीं है। सुनता हूँ कि उन्हें भगवान् शंकरने पहलेसे अपने अधिकारमें कर लिया है, मैं इससे हतोत्साह हो उठा हूँ। ये सब जाति-भाई, सुत-स्त्री आदि सुखके समयके साथी हैं, विपत्तिके समयमें कोई किसीका भी नहीं होता। घर-बाड़ी तथा इस ओड़गाँवकी ऊँची भूमि भी अन्त समय मेरा साथ नहीं देगी। आप अपने स्वभाव-गुणसे ही अपना बना लेती हैं। यदि इस गुणके वशीभूत होकर मुझे अपना लेती हैं तो मुझपर कृपादृष्टि कीजिये। जप करनेसे आपकी प्राप्ति नहीं हो सकती; यह तो भूतको सिद्ध करनेकी-सी बात है, मुख्य वस्तु तो आपकी करुणा है। माँ! मैं तो अबोध बालक हूँ, केवल माँसे ही अपने मनकी व्यथा कहता हूँ। माँकी कृपा मिलेगी ही। जपमाला, झोली, गुदड़ी तो जपके घरमें टँगी-की-टँगी ही है। मुझे तो आपकी ही करुणाका भरोसा है।'

विशु-पर उनके उपर्युक्त भक्तिपूर्ण गानका प्रभाव पड़ा। वह विमुग्ध हो गया। 'आप कौन हैं?' विशुका प्रश्न था। साधक कमलाकान्तने कालीके किंकरके रूपमें अपना परिचय दिया।

'कमल ठाकुर!' विशु चकित हो गया। दौड़कर उसने कमलाकान्तके चरण पकड़ लिये। विशु डाकूके साथी आश्चर्यमें पड़ गये। विशुने साथियोंसे कहा कि 'मैं तुम लोगोंका साथ नहीं दे सकता। कमल ठाकुरके चरण जीवनभर नहीं छोड़ सकता। कालीका नाम ही मेरा मन्त्र है।' कमलाकान्तके भी समझानेपर वह घर नहीं गया और आजीवन उन्हींकी सेवामें रहकर उसने जगदीश्वरीकी आराधना की। बंगालका अभिनव अंगुलिमाल सदाके लिये धर्म और वैराग्यकी शरणमें आ गया, शक्तिका उपासक हो गया।

केनाराम चट्टोपाध्याय अमरारगढ़के निवासी थे।

कमल ठाकुरमें उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा और निष्ठा थी। वे कभी-कभी चान्ना आकर विशालाक्षीके मन्दिरमें साधक कमलाकान्तसे मिला करते थे। कमल ठाकुर केनारामको अपनी कृपा और स्नेह-वृष्टिसे कृतार्थ करनेके लिये अमरारगढ़ जाया करते थे।

बर्दवानके महाराजाकी साधक कमलाकान्तके चरणदेशमें महती अभिरुचि थी। महाराजाके बड़े अनुरोधपर उन्होंने बर्दवानमें बाँका नदीके तटपर स्थित कोटालहाटमें नवनिर्मित श्यामा-मन्दिरमें रहना स्वीकार कर लिया। एक दिन महाराजाके मनमें यह सन्देह उठनेपर कि मिट्टीकी मूर्तिसे किस तरह देवी-शक्तिका आविर्भाव हो जाता है, कमल ठाकुरने समझाया कि सभी वस्तुओंमें महाशक्तिका अस्तित्व है, इसका साक्षात्कार करना अनेक जन्मोंके पुण्यका फल है, जन्म-जन्मके भाग्योदयका प्रतीक है। सच्चिदानन्दरूपका 'सोऽहं' भावमें उदय होनेपर महाशक्तिका आविर्भाव समस्त वस्तुओंमें प्रतीत होता है।

साधक कमलाकान्तका जीवन पूर्णरूपसे जगदम्बाके चरणोंमें समर्पित था। एक बार उनके अस्वस्थ हो जानेपर महाराजा तेजचाँद उन्हें देखने गये। वे मिट्टीसे बने कच्चे घरमें रहते थे। महाराजाकी इच्छा थी कि घर पक्का बन जाय तो शरीर ठण्डक आदि ऋतु-विकारोंसे कम प्रभावित होगा। कमल ठाकुरने बड़े ही संतोषसे कहा कि 'मेरी माँ श्मशानमें रहती हैं, कंकाल ही उनके आभूषण हैं। अब आप ही सोचिये कि मुझे पक्के घरकी आवश्यकता है या नहीं।' इसपर महाराजाने और आग्रह नहीं किया । चलते समय केवल यह निवेदन किया कि यदि किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो सेवामें अविलम्ब भेज दी जाय। कमल ठाकुरने कहा कि 'एक मिट्टीका कोसा चाहिये; पहला थोड़ा-सा फूट गया है, इसलिये पानी पीते समय जल गिर जाता है।' महाराजा आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने कमल ठाकुरकी चरण-धूलि सिरपर चढ़ाकर उन्हें प्रणाम किया और चले गये।

कमलाकान्तके जीवनमें बड़ी-बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाओंका समावेश पाया जाता है। एक समयकी बात है, वे अमरारगढ़में थे। केनाराम कहीं बाहर गये थे। कमलाकान्त श्यामाघरमें बैठकर देवीका चिन्तन कर रहे थे। केनारामकी लड़कीने कहा कि 'बाबा! आज जलानेकी लकड़ी नहीं है।' उसे इस बातका पता नहीं था कि उसके पिता कहीं बाहर चले गये हैं। कमल ठाकुर विशुको साथ लेकर ईंधन लेने चल पड़े। हाथमें टाँगी थी। लौटते समय लोगोंने देखा कि हाथमें टाँगी लेकर ठाकुर आगे-आगे चल रहे हैं और विशु कन्धेपर ईंधन रखकर उनके पीछे-पीछे आ रहा है। गाँवके लोग इस असाधारण घटनासे आश्चर्यमें पड़ गये। चारों ओर इसी बातकी चर्चा थी। केनारामने घर आकर बड़ा पश्चात्ताप किया।

अपने कोटालहाटवाले निवास-स्थानमें ५३ सालकी अवस्थामें बँगला सम्वत् १२२३ में उन्होंने महाप्रस्थान किया। उनका एक पद है—

आमार गति कि हवे, तारा जाने, मा जाने।
तारा बिने आर, इहकाल, परकालेर कथा के जाने॥
आमि यत निपुण साधने, विदित जननीर चरणे।
कत दिने हवे त्राण, कमलाकान्तेर ए मोर भवबन्धने॥

'मेरी क्या दशा होगी, यह बात तारा जानती है, माँको भी ज्ञात है। इस समयकी एवं दूसरे समय—भूत, भविष्यकालकी बात माँके सिवा दूसरा कौन जान ही सकता है। मैं साधनमें कितना सफल हूँ, यह बात जननीके चरणोंपर प्रकट है। न जाने कितने दिनोंमें इस भवबन्धनसे मेरा उद्धार होगा?'

बंगीय शक्ति-साधनाके क्षेत्रमें साधक कमलाकान्तका नाम अमर है। उन्होंने जगज्जननी जगदीश्वरी महाकालीके चरणामृत-रसकी प्राप्तिमें जीवन सार्थक किया।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवद्भक्तिसे हानि नहीं होती

प्रिय बहन! आपका पत्र मिला। आप लड़कपनसे ही यथाशक्ति पूजा-पाठ तथा जप करती हैं। आपके दो पुत्र चले गये। अब तीसरा बच्चा हुआ है। पर आपकी माताजी कहती हैं कि 'इस पूजा-पाठके कारण ही पहले बच्चे मर गये थे। तुम्हारे पूजा-पाठसे इस बच्चेका भी अनिष्ट हो जायगा।' सो यह उनका भ्रम है। भलेका फल कभी बुरा नहीं हो सकता। भगवान्‌की भक्ति, भगवान्‌के नाम-जप तथा अपने घरमें भगवान्‌की पूजा करनेका सभीको अधिकार है। स्त्री हो या पुरुष—यह सभीके लिये मंगलकारी कार्य है। भगवान्‌की भक्तिसे पुत्रोंके मरनेका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। हानि-लाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण सब प्रारब्धके फल हैं। भगवद्भक्तिसे तो सकामभाव होनेपर ये प्रारब्धके विधान उलटे टल सकते हैं। न टलें तो भी अमंगल तो होता ही नहीं। मनुष्य-जीवनकी सफलता ही भगवान्‌की भक्तिमें है। आपको बड़ी नम्रता, विनय तथा सेवा करके माताजीको यह बात समझानी चाहिये। विवाद-झगड़ा कभी नहीं करना चाहिये।

फिर भी यदि माताजीको इससे बहुत ही दुःख होता हो तो आप धीरे-धीरे अपनी भक्तिके भावको मनके अन्दर ले जाइये। मनसे आप भगवान्‌को याद करेंगी, उनकी मानसिक पूजा करेंगी तो उससे कोई आपको रोक नहीं सकता। न किसीको पता ही लग सकता है। फिर किसीकी अप्रसन्नताका कोई प्रश्न ही नहीं रह जायगा। और वास्तवमें जितना महत्त्व मानसिक भावोंका है, उतना बाहरी पूजाका है भी नहीं। पर इसका यह अर्थ नहीं मानना चाहिये कि मैं बाहरी पूजाका निषेध करता हूँ। बाहरी पूजा भी अवश्य करनी चाहिये, परंतु भीतरीके साथ-साथ। और जहाँ-कहीं उससे कोई उपद्रव खड़ा होता हो, (चाहे वह किसीकी भूलसे हो) वहाँ तो ज्यादा अभ्यास भीतरीका ही करना चाहिये।

अन्तमें आपकी माताजीसे भी मेरी प्रार्थना है कि वे इस वहमको छोड़ दें। भगवान्‌की भक्ति और पूजा स्त्री-पुरुष सभी कर सकते हैं और भगवान्‌की भक्ति-पूजासे लोक-परलोकमें कल्याण ही होता है। उसको रोकना, भक्ति करनेवालेका विरोध करना पाप है और उससे परिणाममें दुःख होता है। घरवालोंका तो यह परम धर्म होना चाहिये कि वे समझाकर, विनय करके, सेवा करके सभी घरवालोंको भगवान्‌की भक्तिके मार्गमें लगायें। वही सच्चा घरका मित्र, बन्धु और हितैषी है; जो अपने घरवालों, मित्रों और बन्धुओंको भगवान्‌की ओर लगाता है—

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥

शेष भगवत्कृपा।

(२)

जगत् दुःखकी खान है

प्रिय भाई, सप्रेम हरिस्मरण। भैया! भगवान्‌को छोड़कर यह जगत् दुःखकी खान है। भगवान्‌ने इसे 'दुःखयोनि' बतलाया है। दुःखोंसे छूटनेका एक ही उपाय है—बस, यही कि अपनेको भगवान्‌के प्रति सब प्रकारसे समर्पण कर देना। तभी सच्चा सुख, अपार शाश्वती शान्ति मिल सकेगी। संसारकी नजरमें परिस्थिति पलटनेसे दुःख नहीं मिटेगा, दुःखोंके हेतुमात्र बदल जायँगे। दुःखालयमें दुःख तो रहेगा ही। भगवान्‌की इस नाट्यशालामें चतुर एक्टरकी भाँति खेलते रहो। भगवान् जैसा कुछ स्वाँग दें, जो कुछ प्रदान करें, उसीको सानन्द सिर चढ़ाओ। इस पार्थिव जीवनमें भगवान्‌को छोड़कर कुछ भी नित्य और आनन्द नहीं है। भगवान्‌से ही आनन्दका झरना बहता है, उसमें नहाओ, कृतार्थ हो जाओगे। ये भावुकताके शब्द नहीं हैं, सत्य तथ्य है।

तुम्हारे शरीर और मन स्वस्थ होंगे। भगवान्‌का

स्मरण किसी भी बुद्धिसे अवश्य करते रहना।

शेष प्रभुकृपा।

(३)

ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके प्रश्नोंके संक्षिप्त उत्तर निम्नलिखित हैं—

१. ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है। तुकाराम, नामदेव, सूरदास, तुलसीदास, गौरांग महाप्रभु, श्रीरामकृष्ण परमहंस आदिपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। जो भी भगवान्‌का सच्चा भक्त हो, वह आज भी भगवान्‌के दर्शन प्राप्त कर सकता है।

२. लक्ष्मी और कीर्ति तो प्रारब्धजन्य पुण्यके फलस्वरूप बढ़ती हैं। इस जीवनमें जो दम्भ, छल, कपट आदि करते हैं, वे कोई भी हों और लोग उन्हें कुछ भी कहें या समझें, अपने कर्मोंके फलस्वरूप अनन्त दुःख तो आगे चलकर उन्हें भोगने ही पड़ेंगे।

३. धन, कीर्ति, स्वास्थ्यादि भगवान्‌की प्रार्थनासे भी मिल सकते हैं। प्रार्थनाके लिये न कोई प्रकार है, न स्थान और न समय। पूर्ण विश्वाससे, अनन्यभावसे जो सहज कातर-प्रार्थना होती है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाती। प्रार्थना हृदयसे उठती है, उसे पुस्तकके द्वारा सीखा नहीं जाता। बँधे शब्द प्रार्थना नहीं हैं। भगवान्‌के प्रति अपने हृदयके सच्चे भावोंका पूर्ण विश्वाससे निवेदन करना ही प्रार्थना है।

४. सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये। सन्ध्या न करनेसे प्रत्यवाय (एक प्रकारके दोष)-की प्राप्ति होती है।

५. मनकी एकाग्रता तो अभ्याससे होती है। धैर्य एवं नियमपूर्वक अभ्यास करते रहनेसे धीरे-धीरे मन एकाग्र होने लगेगा।

६. आत्महत्या बड़ा भारी पाप है। इससे किसी कष्टकी निवृत्ति नहीं होती। प्रारब्ध तो आगे भी भोगना ही पड़ेगा और आत्महत्याके पापके फलसे वह और घोरतर हो जायगा। अतः आत्महत्या-जैसी बात तो मनसे निकाल ही देनी चाहिये। भगवान् परम दयालु हैं। उनकी कृपापर पूर्ण विश्वास करके उन दयामयसे प्रार्थना करना ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

(४)

विचित्र प्रश्न

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। धन्यवाद! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१. भगवान्‌को किसने उत्पन्न किया? आपका यह प्रश्न बड़ा विचित्र है। शास्त्रोंमें भगवान् अजन्मा, अविनाशी, नित्य, सनातन एवं सबके मूल तथा सर्वाधार होनेसे स्वयं निर्मूल, आत्ममूल, निराधार, आत्माधार एवं परात्पर कहे गये हैं—**'स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः।'** उन्हींसे सबकी उत्पत्ति होती है। उनकी कभी किसीसे उत्पत्ति नहीं होती। जो वस्तु सदा रहनेवाली है, उसकी उत्पत्ति किससे हो सकती है? जिससे सबकी उत्पत्ति, पालन और संहार-कार्य होते हैं तथा जो किसी दूसरेसे उत्पन्न न होकर सदा विद्यमान रहता है, वही भगवान् है—**'मूले मूलाभावादमूलं मूलम्'** (सांख्यदर्शन)।

२. सृष्टिरचना भगवान्‌का एक खेल है। अनन्त महासागरके वक्षःस्थलपर युग-युगसे जो अनन्त तरंग-मालिकाएँ उठती और विलीन होती रहती हैं, उनमें वायुदेवके विभ्रम-विलासके सिवा और क्या कारण हो सकता है? इन उत्ताल तरंगोंके उत्थान और लयका क्या उद्देश्य है? कौन कह सकता है? यदि कहें भगवान्‌की वह लीला किस कामकी, जिसमें असंख्य जीव कष्ट भोगते रहते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य अपने ही काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणोंसे प्रेरित होकर जो शुभाशुभ कर्म करता है, उसीके फलस्वरूप सुख-दुःख भोगता है। जो इन दुर्गुणोंसे बचकर राग-द्वेष, दर्प-अहंकार आदिसे दूर रहता है, वह दुःखका भागी नहीं होता। दुःख भी अज्ञानवश ही है, वास्तवमें नहीं। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ॠतु, आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ४।४० बजेतक	मंगल	मूल दिनमें ७।४५ बजेतक	२१ जून	**सायन कर्कराशि** का सूर्य दिनमें ११।४२ बजे, **मूल** दिनमें ७।४५ बजेतक।
द्वितीया ,, ४।४६ बजेतक	बुध	पू० षा० ,, ८।४३ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४।३४ बजेसे, **मकरराशि** दिनमें २।५० बजेसे, **आर्द्रा-नक्षत्र** का सूर्य प्रात: ६।२१ बजे।
तृतीया ,, ४।२२ बजेतक	गुरु	उ० षा० ,, ९।११ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें ४।२२ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।७ बजे।
चतुर्थी ,, ३।२८ बजेतक	शुक्र	श्रवण ,, ९।१० बजेतक	२४ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ८।५५ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ८।५५ बजे।
पंचमी ,, २।९ बजेतक	शनि	धनिष्ठा ,, ८।४१ बजेतक	२५ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, १२।२७ बजेतक	रवि	शतभिषा ,, ७।५३ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिन १२।२७ से रात्रिमें ११।२७ बजेतक, **मीनराशि** रात्रि १।१ बजेसे।
सप्तमी ,, १०।२६ बजेतक	सोम	पू० भा० प्रात: ६।४३ बजेतक	२७ ,,	**कालाष्टमी।**
अष्टमी ,, ८।११ बजेतक	मंगल	उ० भा० प्रात: ५।१९ बजेतक रेवती रात्रिशेष ३।४५ बजेतक	२८ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ३।४५ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ३।४५ बजे। **मूल** प्रात: ५।१९ बजेसे।
नवमी प्रात: ५।४७ बजेतक दशमी रात्रिमें ३।१९ बजेतक	बुध	अश्विनी रात्रिमें २।५ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ४।३३ बजेसे रात्रिमें ३।१९ बजेतक, **मूल** रात्रिमें २।५ बजेतक।
एकादशी ,, १२।४९ बजेतक	गुरु	भरणी ,, १२।२५ बजेतक	३० ,,	**योगिनी एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, १०।२६ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, १०।५० बजेतक	१ जुलाई	**वृषराशि** प्रात: ६।१ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ८।१२ बजेतक	शनि	रोहिणी ,, ९।२६ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।१२ बजेसे, **शनिप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी सायं ६।११ बजेतक	रवि	मृगशिरा ,, ८।१४ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।१२ बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें ८।५० बजेसे।
अमावस्या दिनमें ४।२९ बजेतक	सोम	आर्द्रा ,, ७।२४ बजेतक	४ ,,	**सोमवती** अमावस्या।

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षाॠतु, आषाढ़ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३।१० बजेतक	मंगल	पुनर्वसु सायं ६।५३ बजेतक	५ जुलाई	**कर्कराशि** दिनमें १।१ बजेसे।
द्वितीया ,, २।१५ बजेतक	बुध	पुष्य ,, ६।४८ बजेतक	६ ,,	**श्रीजगदीश रथयात्रा,** पुनर्वसुका सूर्य दिनमें ७।५६ बजे, **मूल** सायं ६।४८ बजेसे।
तृतीया ,, १।५१ बजेतक	गुरु	आश्लेषा रात्रिमें ७।१३ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।५३ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिमें ७।१३ बजेसे।
चतुर्थी ,, १।५६ बजेतक	शुक्र	मघा ,, ८।९ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें १।५६ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** रात्रिमें ८।९ बजेतक।
पंचमी ,, २।३४ बजेतक	शनि	पू० फा० ,, ९।३४ बजेतक	९ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें ४।२ बजेसे।
षष्ठी ,, ३।३८ बजेतक	रवि	उ० फा० ,, ११।२६ बजेतक	१० ,,	**स्कन्दषष्ठी।**
सप्तमी सायं ५।१० बजेतक	सोम	हस्त ,, १।४२ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** सायं ५।१० बजेसे।
अष्टमी ,, ६।५८ बजेतक	मंगल	चित्रा रात्रिशेष ४।१२ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** प्रात: ६।४ बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें २।५७ बजेसे।
नवमी रात्रिमें ८।५८ बजेतक	बुध	स्वाती अहोरात्र	१३ ,,	× × × ×
दशमी ,, १०।५९ बजेतक	गुरु	स्वाती प्रात: ६।५० बजेतक	१४ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें २।४५ बजेसे।
एकादशी ,, १२।५० बजेतक	शुक्र	विशाखा दिनमें ९।२४ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।५५ बजेसे रात्रिमें १२।५० बजेतक, **श्रीहरिशयनी एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, २।२२ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ११।४५ बजेतक	१६ ,,	चातुर्मास्यव्रत प्रारम्भ, **कर्कसंक्रान्ति** रात्रिमें ९।५ बजे, **वर्षाॠतु** एवं **दक्षिणायन** प्रारम्भ, **मूल** दिनमें ११।४५ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ३।३० बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, १।४६ बजेतक	१७ ,,	**प्रदोषव्रत,** धनुराशि दिनमें १।४६ बजेसे।
चतुर्दशी रात्रिशेष ४।१० बजेतक	सोम	मूल ,, ३।२० बजेतक	१८ ,,	**मूल** दिनमें ३।२० बजेतक, **भद्रा** रात्रिशेष ४।१० बजेसे।
पूर्णिमा ,, ४।१८ बजेतक	मंगल	पू० षा० ,, ४।२५ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें ४।१४ बजेतक, **गुरुपूर्णिमा, मकरराशि** रात्रिमें १०।३४ बजेसे।

कृपानुभूति

(१)

जब माँने मुझे मौतके मुँहसे बचाया

करुणामयी माँकी कृपा-वर्षा तो सभी प्राणियोंपर समान-रूपसे हो रही है, परंतु उनकी कृपाका अनुभव किसी विरले भाग्यशालीको ही हो पाता है। मुझे विगत वर्षोंमें माँकी कृपाका अनेक बार अनुभव हुआ है। इनमेंसे एक घटना इस प्रकार है—

बात लगभग चालीस वर्ष पुरानी है। जबलपुरकी विजयादशमी प्रसिद्ध है। मेरी ननद एवं सासजीकी इच्छा विजयादशमीका उत्सव देखनेकी हुई। उन लोगोंको साथ लेकर मैं जबलपुर अपने माँके यहाँ गयी। हमने विजया-दशमीके दिन दुर्गा-प्रतिमाओंकी भव्य शोभा-यात्राका दर्शन किया और विचार हुआ कि कल ग्वारीघाट जाकर नर्मदा-स्नान करनेके पश्चात् दुर्गा-विसर्जनका दृश्य देखा जायगा।

हम अगले दिन प्रात: ८ बजे घरसे रिक्शा करके ग्वारीघाटके लिये चल पड़ीं। मार्गमें गलगला चौकपर स्थित प्रसिद्ध देवी-मन्दिर मिला। हमलोगोंने वहाँ भगवती दुर्गाका दर्शन किया और मन-ही-मन माँसे निवेदन किया कि 'माँ! हम सब लौटते समय आपकी आरतीमें सम्मिलित होंगी।'

तत्पश्चात् पुन: हम सब वहाँसे रिक्शाद्वारा ग्वारीघाटके लिये चल पड़ीं। रिक्शेकी सीटपर मेरी सास तथा ननद बैठी थीं एवं पटियेपर मेरे साथ मेरा भाँजा बैठा था। बादशाह हलवाईके मन्दिरके पासवाले मोड़पर नीचेकी ओरसे सहसा एक ट्रक आया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह हमारे रिक्शेको कुचल देगा। अचानक मेरे मुँहसे निकला—'माँ! हमारी रक्षा करो।' ट्रककी जोरदार टक्कर हुई और रिक्शेके एक चक्केपर ट्रक चढ़कर रुक गया, जैसे किसी अज्ञात शक्तिने ट्रकको रोक दिया हो। रिक्शाका चक्का चकनाचूर हो गया, परंतु हम चारों एवं रिक्शाचालक दूसरी ओर गिरे और सभी सुरक्षित बच गये। हमने हृदयसे भगवती जगदम्बाके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम किया। सकुशल हम सब ग्वारीघाटपर प्रतिमा-विसर्जनके मनोहारी दृश्यको देखकर वापसी यात्रामें गलगला चौकपर स्थित देवी-मन्दिरकी आरतीमें सम्मिलित हुईं। तदुपरान्त अपने निवास-स्थानपर आ गयीं। सच्चे हृदयसे पुकारनेपर माँ मौतके मुखसे अवश्य बचा लेती हैं। भगवतीकी असीम कृपाका स्मरणकर आज भी मेरा हृदय गद्गद हो जाता है।—**श्रीमती प्रभा वैद्य**

(२)

ईश्वरकृपासे जीवन-दान

बात जून १९८५ ई० की है। मेरी माताजीके ट्यूमरका ऑपरेशन हुआ था। उन्हें कैंसर हो गया था। जब ऑपरेशनके बाद उन्हें घर लाया गया तो उनकी स्थिति निरन्तर बिगड़ती ही जा रही थी। डॉक्टरोंने भी अत्यधिक प्रयास किया, किंतु स्वास्थ्यमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कुछ दिनों बाद माताजीकी हालत बहुत गम्भीर हो गयी। डॉक्टरोंने हमें बता दिया कि माताजी अब अधिक-से-अधिक एक महीना बचेंगी। हम सभी बहुत निराश हो गये; क्योंकि घरमें उनके अतिरिक्त और कोई घरकी सँभाल करनेवाला न था। पिताजीका पहले ही स्वर्गवास हो चुका था।

ऐसी विषम परिस्थितिमें मेरी बुआने मुझसे कहा कि मैं प्रतिदिन हनुमान्जीके मन्दिरमें जल चढ़ाने जाया करूँ और चरणामृत लाकर माँको पिला दिया करूँ। अत: मैं उसी दिनसे हनुमान्जीके मन्दिरमें जल चढ़ाने जाता और दुखी हृदयसे माँकी प्राण-रक्षाके लिये हनुमान्जीसे प्रार्थना करता तथा चरणामृत माँको पिलाया करता। मेरा छोटा भाई भी प्रतिदिन माँके समीप बैठकर रामचरितमानसका नियमित पाठ करता। हम अपनेको पूर्ण असहाय अनुभव करते थे। भगवान्से विनती करनेके अतिरिक्त माँके स्वास्थ्य-लाभका और कोई सहारा नहीं था। करुणावरुणालय सर्वेश्वर ही एकमात्र आधार थे हमारे। सर्वान्तर्यामी प्रभुने हमारे मनकी भावनाको जान लिया तथा हमारी विनती भी स्वीकार कर ली। धीरे-धीरे माताजीके स्वास्थ्यमें सुधार होने लगा और कुछ दिनों बाद वे पूर्ण स्वस्थ हो गयीं। आज भगवान्की कृपासे मेरी माताजी पूर्णत: स्वस्थ हैं। आज भी भगवान्का ध्यान आते ही मन श्रद्धासे भरकर उनके चरणोंमें झुक जाता है।—**के० आर० सोनारे 'दीपक'**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मुझे भी वही परमात्मा दे देगा

यद्यपि कराल कलिकाल और उपभोगवादी संस्कृतिके प्रभावसे जीवन-मूल्य, नैतिकता, ईमानदारी, सच्चरित्रता, ईश्वर-विश्वास आदि सद्गुणोंका समाजमें तेजीसे ह्रास होता जा रहा है; पर जीवनमें कभी-कभी ऐसी भी घटनाएँ घट जाती हैं, जिनसे जिन्दगीमें एक मुसकान आ जाती है और यह कहना पड़ता है कि 'नहीं, इन दैवी गुणोंका अभी धरतीसे लोप नहीं हुआ है,' यद्यपि ऐसी घटनाएँ ***'जनु मरुभूमि देवधुनि धारा'*** की भाँति अल्प ही होती हैं। ऐसी ही एक घटना गत वर्ष मेरे भी साथ घटी थी। हुआ यह कि मैं किसी कार्यसे रायबरेली शहर गया था, घर वापस लौटनेपर देखा कि जेबमें पर्स तो है ही नहीं। अब मेरे तो होश उड़ गये। चिन्ताका विषय यह था कि उस पर्समें बाइस हजार नकद रुपयोंके साथ-साथ दो बैंकोंके ए०टी०एम० कार्ड, पैन कार्ड, आधार कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस तथा अन्य जरूरी कागजात भी थे। इनका दुरुपयोग भी हो सकता था। पर्स कहाँ गिरा होगा—इसी उधेड़बुनमें मैं परेशान था। मेरी परेशानीकी यह स्थिति लगभग दो घण्टेतक बनी रही।

अचानक दो घण्टे बाद एक फोन आया। मेरेद्वारा काल-रिसीव करनेपर उधरसे आवाज आयी, 'क्या आप माधवेश सिंह बोल रहे हैं?' मैंने कहा—हाँ, भाई! बोल रहा हूँ। उधरसे पूछा गया, 'क्या आपका कुछ खो गया है?' मैंने कहा कि लगभग दो घण्टे पहले मैं घण्टाघरकी ओर गया था, उधर ही कहीं मेरा पर्स गिर गया, फिर मैंने पर्समें रखी सामग्रीके विषयमें बताया। मैंने फोन करनेवालेका परिचय जानना चाहा तो उसने कहा कि मैं यहाँ खोवामण्डीमें एक साइकिल स्टोरपर बैठा हूँ, आप आ जाइये; आपका पर्स मिल जायगा।

मैं बताये हुए स्थानपर पहुँचा तो वे फोन करनेवाले सज्जन मुझे पर्स लिये मिले। उन्होंने कहा कि आप अपना यह पर्स देख लीजिये कि इसमें सारा सामान है या नहीं। मैंने देखा तो उसमें रुपयोंसहित सारे कागजात यथावत् रखे थे। मैंने प्रसन्नतापूर्वक कृतज्ञ हृदयसे उन सज्जनका आभार व्यक्त करते हुए उसमेंसे दो हजार रुपये उन्हें देने चाहे तो उन सज्जनने कहा—भाई साहब! यह पर्स मुझे नहीं मिला, यह सामनेवाली दूकानपर काम करनेवाले पल्लेदारको मिला था, उसने मुझे लाकर दिया और कहा कि साहब! इसमें रुपयोंके अलावा जरूरी कागज भी रखे हैं, जिसका हो, किसी प्रकार उसतक खबर कर दीजिये, मैं इसमें लिखा पढ़ भी नहीं पाऊँगा।

मैंने सामनेकी दूकानसे उस पल्लेदारको बुलवाया और धन्यवाद देते हुए उसे दो हजार रुपये यह कहकर देने लगा कि यह तुम रख लो, यह तुम्हारी ईमानदारीका ईनाम है। उसने कहा—साहब! आपका सामान आपको मिल गया, यही मेरे लिये सबसे बड़ा ईनाम है, मुझे पैसोंकी जरूरत नहीं है। मैंने पुनः उससे आग्रह किया कि भाई! मेरे संतोषके लिये ही ले लीजिये। इसपर उसने कहा—साहब! इतने रुपये आपको कौन देता है? मैंने कहा—परमात्मा देता है। इसपर उसने कहा—तो फिर वही परमात्मा मुझे भी दे देगा।

मैं उसके इस उत्तरसे अवाक् रह गया कि यह व्यक्ति इतनी आर्थिक विपन्नताकी स्थितिमें भी सद्गुणों और मानवीय मूल्योंसे कितना सम्पन्न है। उसने आगे कहा—साहब! रही बात आपके संतोषकी, तो जब आप परमात्मासे अपने लिये प्रार्थना करना तो मेरे लिये भी इतनी प्रार्थना कर लेना कि मेरी भुजाओंमें बल और सीनेमें ईमानदारी बनी रहे।—**माधवेश सिंह**

(२)

'अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम्'
[आँखों देखी घटना]

आजसे प्रायः पचीस साल पहलेकी बात है। तब मैं अपने घरसे प्रायः पचास कि०मी० दूर स्थित हावाजान उच्चतर माध्यमिक विद्यालयमें अध्यापन करता था। एक कमरा किरायेपर लेकर वहीं रहता था। घरके मालिक कार्की महोदय भी इसी विद्यालयके शिक्षक थे।

एक दिन शनिवारको जब मैं विद्यालयसे कमरेको वापस आया और घर आनेकी बात सोच रहा था कि कार्की सरके बड़े भाई लोकनाथ कार्की, जो अध्यापन ही करते थे, ने मेरे पास आकर हँसते-हँसते थोड़ा-सा मजाक करते हुए कहा—'मास्टरजी! ठण्डका मौसम है। ठण्डे पानीमें हाथ डुबाते हुए खाना बनाना कठिन काम है ना? एक दिन ही क्यों न हो, आराम तो कीजिये। आज चलिये शिमलुगुडी जायँ। आपको अपने बड़े भाईसे न मिले शायद बहुत दिन हुए, मिल सकेंगे।' मैंने भी तुरन्त मान लिया कि बात सही है। तैयार होकर हम दोनों साइकिलसे शिमलुगुडीको चले। शिमलुगुडी पन्द्रह कि०मी० दूरीपर था। बीचमें रेललाइनका क्रॉसिंग पड़ता था। रेल-लाइन पार होकर सड़कके किनारेपर स्थित एक पानकी दूकानपर पान खानेकी इच्छा हुई। दोनों रुके, उसी वक्त ट्रेन गुवाहाटीसे रंगापाड़ा जंक्शन होकर लक्ष्मिपुर शहरकी ओर आती हुई दिखायी पड़ी। मैं ट्रेनको देखनेके लिये उत्सुक हुआ। उत्सुक इसलिये हुआ कि ट्रेनमें दूर-दूरके पैसेंजर-रूपी नरनारायणका दर्शन घर बैठे ही कर सकूँ। अकस्मात् नजर सामने रेल लाइनपर पड़ी। देखा कि कुछ दूरीपर एक बकरी सद्योजात अपने दो बच्चोंके साथमें लाइनके बीच इधर-से-उधर कर रही है, ट्रेन जिधरसे आ रही थी, उधर ही सिर करके। मन चाहता था कि उन सबको लाइनसे बाहर कर दूँ, पर ट्रेन इतने नजदीक आ पहुँची थी कि इतना समय था नहीं। आखिर हम दोनों **'राम राम'** कहने लगे। शनैः-शनैः बकरी और एक बच्चेको लाइनसे बाहर आते देखकर अच्छा लगा, पर दूसरा बच्चा तो तीव्रगतिशील निकटवर्ती ट्रेनकी ओर सिर उठाकर देखने लगा। ट्रेन आयी और उसने बच्चेको धक्का मार दिया। बच्चा करीब पन्द्रह फीटकी दूरीपर जा गिरा किनारेपर। हम आँखें बन्द करनेके सिवाय और कर ही क्या सकते थे। ट्रेनके चले जानेपर हम वहाँ पहुँचे। देखा कि वह सकुशल जमीनपर खड़ा है, कहीं चोटतक नहीं। हमने उसे उसकी माँके पास पहुँचा दिया। वह माँका दूध पीने लगा। हमें आश्चर्य हुआ और **'अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम्'** यह कथन पूर्णतया सत्य प्रतीत हुआ कि जिसकी रखवाली ऊपरवाला करना चाहता है, उसे कोई नहीं मार सकता। बकरीके नन्हे-से बच्चेको ट्रेनकी टक्करसे ऊपरवालेकी कृपाने ही बचाया था।—**उदयनारायण गौतम**

(३)

एक नयी सुबह

हमारे जीवनमें कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, जो दुःखदायी होते हुए भी हमारी अन्तरात्माकी चेतनाको जाग्रत्कर हमारे जीवनकी धाराको बदल देती हैं। ऐसा ही एक सच्चा वृत्तान्त मुझे मेरे मित्रने बताया, जो उसके जवानीके दिनोंमें घटित हुआ था, जिसने मुझे चिन्तनके लिये मजबूर कर दिया।

उसने बताया कि यह बात आजसे लगभग तीस वर्ष पुरानी है, मैं एक कम्पनीमें उच्च पदपर कार्यरत था और अपनी पत्नी एवं पुत्रके साथ सुखमय जीवन बिता रहा था। एक दिन मेरा एक मित्र कार्यालयसे निकलनेके बाद मेरे ना करनेपर भी मुझे एक बारमें ले गया। वहाँपर लोग नृत्यके साथ-साथ मदिरापान भी कर रहे थे। वहाँपर बारबालाएँ अपने नृत्य एवं भाव-भंगिमाओंसे आगंतुकोंका मन मोह रही थीं। इन्हींमेंसे एक बाला मेरे समीप आकर बैठ गयी। उसके आकर्षक व्यक्तित्व एवं मीठी वाणीने मुझे सहज ही अपनी ओर खींच लिया। अब मैं प्रतिदिन उससे मिलनेके लिये बारमें जाने लगा और रुपये भी लुटाने लगा। इसका नतीजा हुआ, घरमें धनकी कमीसे आपसी-कलह। एक दिन पत्नीको सारी बातोंके पता चलनेपर वह मुझे छोड़कर, पुत्रके साथ मायके चली गयी।

अब मैं और भी ज्यादा स्वच्छन्द हो गया था और दिन-रात शराबके नशेमें डूबकर बारमें समय बिताने लगा, एक दिन धनके अभावके कारण उस बालाके द्वारा चाहे गये उपहारको मैं नहीं दे पाया तो उसने अपना असली रूप दिखाते हुए मुझसे कहा—'अब तुम यहाँपर आने और मेरेसे बात करनेके काबिल नहीं रहे, यहाँपर सम्मान उसीका होता है, जो धनवान् होता है, धनविहीन एवं भिखारियोंके लिये यहाँ कोई जगह नहीं है। तुम क्या थे, इससे मुझे कोई मतलब नहीं है, तुम आज क्या

हो मैं इसीको महत्त्व देती हूँ, अब तुम मेरे पाससे रफा-दफा हो जाओ और आगेसे यहाँ आने या मुझसे मिलनेकी जुर्रत कभी मत करना'। इन शब्दोंको सुनकर मुझे गहरा आघात लगा और अत्यन्त आन्तरिक वेदनाके साथ मैं वहाँसे बाहर चला आया।

मैं मनमें ग्लानिवश आत्महत्याके विषयमें सोचने लगा, मेरी पत्नी तो मेरे क्रिया-कलापोंके कारण मुझसे विमुख हो चुकी थी और जिससे प्रेम करता था, उसके इस स्वरूपको देखकर मैं भौचक्का था। मैं मनमें सोच रहा था कि एक मेरी पत्नी जो कि सौम्य, सीधी-सादी एवं मेरे प्रति समर्पित थी, उसने कभी भी मुझे भोजन कराये बिना अन्न ग्रहण नहीं किया, मैं जो भी धन उसे देता था, उससे वह घरका खर्च सुचारु रूपसे चलाती थी। उसने अपने लिये किसी प्रकारकी माँग नहीं की। वह हमेशा ईमानदारी, सत्यता एवं कार्यके प्रति पूर्ण समर्पण एवं लगनकी अपेक्षा रखती थी। उसकी मैंने सदा उपेक्षा की, उसका अपमान किया। मेरे जीवनको धिक्कार है। यह सब समझते हुए मेरा मन ग्लानि एवं पश्चात्तापसे भर गया।

मैंने निश्चय किया कि मुझे अपनी पत्नीके पास जाकर अपने कृत्योंके लिये माफी माँगनी चाहिये, जिससे मेरे मनको शान्ति प्राप्त हो सके। मैंने अपनी पत्नीसे हृदयसे अपनी गलतियोंके लिये माफी माँगी और निवेदन किया कि वह मुझे माफ कर दे और मुझे एक मौका जीवनमें सुधरनेका दे दे। मेरे बहुत अनुनय-विनयके बाद मेरी साध्वी पत्नी यह सोचकर कि जीवनमें गलती किससे नहीं होती, उसने माफ कर दिया और मेरे साथ वापस अपने घर आ गयी। गृहलक्ष्मीके घर आते ही मानो मुझमें नयी ऊर्जाका संचार हो गया और प्रभुकृपासे मैं एक बड़ी कम्पनीमें पुनः कार्यरत हो गया। मैं अब जीवनका हर कदम सँभल-सँभलकर रखने लगा। कुछ समय बाद प्रभुकृपासे धीरे-धीरे कठिन परिश्रम एवं सकारात्मक सोचसे पुनः सुखमय जीवन जीने लगा। **प्रेषक—राजेश माहेश्वरी**

(४)

पिताके पुण्यसे पुत्रको जीवनदान

पूज्य स्व० श्रीसुधाकर पाण्डेयजीके बड़े पुत्र श्रीपद्मनाभम्‌के पैरमें एक दिन अकस्मात् बड़ी तेजीसे झुनझुनाहट होने लगी, आजमगढ़के डॉक्टरको दिखाया गया, उनकी सलाहपर सिटीस्कैन कराया, जिससे पता चला कि सिरमें १७ मि०मी० नस फट गयी है और खून जम गया है। तदनन्तर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसके न्यूरोरोग-विशेषज्ञको २४ जून सन् २०१४ ई० को दिखाया गया, डॉक्टर साहबने कहा—'विगत कई वर्षोंसे प्रतिदिन मैं हजारों मरीज देखता हूँ, पर १७ मि०मी० नस फट गयी है और मरीज होशमें सामान्य दशामें है, यह बड़ा चमत्कार है, यह दैवी कृपा है या इनके पूर्वजोंके पुण्यका प्रभाव है।'

पाण्डेयके पूर्वज मध्य प्रदेशके वैकुण्ठपुरमें रियासतके राजपण्डित थे। पूज्य स्व० पं० सुधाकरजी अपने पिताजीकी तरह धार्मिक प्रवृत्तिके रहे। इन्होंने सन् १९६८ से १९९९ ई० तक प्राथमिक विद्यालय शिक्षा क्षेत्र मिर्जापुर, आजमगढ़में आदर्श अध्यापककी तरह कार्य किया। ये कल्याणके बड़े प्रेमी थे। ग्रीष्मावकाशमें सत्संगहेतु स्वर्गाश्रम, हरिद्वार जाया करते थे। लगभग २० वर्षोंसे हरे राम महामन्त्रका जप करके जपसंख्या कल्याणमें भेजते थे। अनुमान है कि इन्होंने १० से १५ करोड़ नामजप किये होंगे।

नवम्बर, सन् २०११ ई० को इनकी हल्की तबीयत खराब हुई तो बड़े पुत्र श्रीपद्मनाभम् इन्हें सदर अस्पताल आजमगढ़ ले गये। पाण्डेयजीने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! क्यों परेशान होते हो, मेरी औषधि गंगाजल और तुलसी-दल है। मेरे वैद्य श्रीरामजी मेरे सामने खड़े हैं।' अस्पताल पहुँचकर कोई दवा होनेसे पहले सामान्य अवस्थामें वे पांचभौतिक शरीर छोड़कर भगवान् श्रीरामके धाम सहर्ष चले गये। इस कलियुगमें ऐसे संतके चरणोंमें कोटिशः वन्दन। **प्रेषक—हरिवंश सिंह**

मनन करने योग्य

'दयालु दीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हैं'

महात्मा शिवरामकिंकरके सम्बन्धमें पढ़ा था कि एक बार डाकिया तारका मनीआर्डर लेकर उनके पास पहुँचा। तारमें लिखा था कि 'भगवान् शिवने स्वप्नमें मुझसे कहा है कि अमुक स्थानपर मेरा भक्त शिवरामकिंकर तीन दिनसे भूखा है! उन्हींके लिये मैं तारसे यह रुपया भेज रहा हूँ। इस नामके कोई सज्जन हों तो उन्हें खोजकर उनके चरणोंमें यह तुच्छ भेंट पहुँचा दी जाय!'

× × ×

कहते हैं कि एक बार शिवाजी महाराजके मनमें यह भाव आ गया कि मैं इतने व्यक्तियोंको खिलाता हूँ।

अचानक उनके गुरुदेवने वहाँ प्रकट हो एक भारी पत्थर तुड़वाया। देखा, उसके भीतर थोड़ी-सी तरीके बीचमें एक मेढक बैठा है।

शिवाजी लाजसे कटकर रह गये। जब उन्होंने पूछा—'इस मेढकको भोजन कौन भेजता है?'

× × ×

श्री म······ 'आकाशवाणी' में काम करते हैं।

विवाहकी आयुवाली एक बहनकी चिन्ता उन्हें ही नहीं, सभी घरवालोंको खाये जा रही है।

जमीन है, पर उसपर कई हजारका कर्ज लदा है।

नौकरीसे अपनी गुजर किसी कदर चल जाय, इतना ही बहुत!

× × ×

पारसाल बहनकी शादी एक जगह तय हो गयी।

समयसे टीकेके लिये रकम एकत्र न हो सकी और वह सम्बन्ध टूट गया!

पैसेकी दुनियामें बिना पैसेवालोंको पूछता ही कौन है। गरीबोंकी बेबसीपर किसे तरस आता है। दहेजकी कौड़ी-कौड़ीको दाँतसे पकड़नेवाले लोगोंके हृदयमें दया कहाँ।

× × ×

दीनबन्धु बिन दीनकी को 'रहीम' सुधि लेय।

× × ×

अभी-अभी उस दिन श्री म······को तार मिला—'तुम्हारी बहनका फलदान चढ़ गया है। तुम छुट्टी लेकर फौरन आ जाओ। सभी घरवालोंको लेकर तुम्हें काशी जाना है। वहीं विवाह होगा। कन्यादान तुम्हें ही करना है!'

× × ×

छुट्टीके लिये बड़ी दौड़-धूप की। अफसरोंने इनकार कर दिया। पर जिसकी अर्जी मालिकके दरबारमें मंजूर हो गयी, उसकी अर्जी यहाँपर मंजूर हुए बिना कैसे रह सकती है।

'जरा देरको सोचिये कि आपकी बेटीकी शादी हो तो क्या आप ऐसे मौकेपर रुक जायँगे?'—बाल-बच्चेदार अफसर पिघल ही तो गया म······के मुँहसे यह दलील सुनकर!

× × ×

विवाह सकुशल सम्पन्न हो गया। लड़का स्वस्थ, सुशील, पढ़ता भी है, कुछ पैदा भी करता है।

दो हजार फलदानमें लगा और एक हजार अन्य सब फुटकर खर्चोंमें!

× × ×

पर, यह तीन हजार रुपया आ कहाँसे टपका?

× × ×

श्री म······से एक सज्जनका मुकदमा चल रहा है।

पानीके प्रश्नको लेकर फौजदारी हो चुकी है····।

उनके बेटेने एक दिन उनसे कहा—'बाबू, म······के पिताके आपपर बड़े उपकार हैं। उन्होंने आपके प्राणोंकी भी रक्षा की है। उनसे और आपसे बड़ी दोस्ती थी। उनकी बेटीकी शादी पैसेके अभावमें रुकी रहे, यह तो ठीक नहीं। यह तो इज्जतका सवाल है। पिताके मित्र होनेके नाते आपकी इज्जतका भी सवाल है। पानीका झगड़ा अपनी जगह है, उसे तो इसमें बाधक नहीं बनना चाहिये। इस मौकेपर तो आपको म······की मदद करनी ही चाहिये!······।

× × ×

बेटेके मुँहसे भगवान् बोले।

पिताने खटसे तीन हजार रुपये निकालकर दे दिये!

[श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट]

गीताप्रेससे प्रकाशित बाल-साहित्य पढ़ें और पढ़ावें

कोड	पुस्तक-नाम		मू० ₹
	बालकोपयोगी पुस्तकें रंगीन चित्रोंके साथ		
1690	बालकके गुण	ग्रन्थाकार	३५
1689	आओ बच्चों तुम्हें बतायें	”	२५
1692	बालककी दिनचर्या	”	२५
1693	बालकोंकी सीख	”	२५
1694	बालकके आचरण	”	२५
1691	बालकोंकी बातें	पुस्तकाकार	१५
1437	वीर बालक	”	२०
1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक	”	१५
1450	सच्चे और ईमानदार बालक	”	१५
1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ	”	१५
1448	वीर बालिकाएँ	”	१५
	सत्य घटनाओंपर आधारित कहानियाँ		
159	आदर्श उपकार		२०
160	कलेजेके अक्षर		२०
161	हृदयकी आदर्श विशालता		२०
162	उपकारका बदला		२०
163	आदर्श मानव हृदय		२०
164	भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा		२०
165	मानवताका पुजारी		२०
166	परोपकार और सच्चाईका फल		२०
510	असीम नीचता और असीम साधुता		२०
	रोचक कहानियाँ		
1669	पौराणिक कहानियाँ		१५
1624	पौराणिक कथाएँ		१५
1673	सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ		२५
1093	आदर्श कहानियाँ		१५
137	उपयोगी कहानियाँ		१५
147	चोखी कहानियाँ		१०
122	एक लोटा पानी		२०
1308	प्रेरक कहानियाँ		१०
680	उपदेशप्रद कहानियाँ		१५
1688	तीस रोचक कथाएँ		१५
1782	प्रेरणाप्रद कथाएँ		२०
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ		१०
1938	गीता माहात्म्यकी कहानियाँ		१०

‘गीताप्रेस’ गोरखपुरकी निजी दूकानें

इन्दौर— जी० 5, श्रीवर्धन, 4 आर. एन. टी. मार्ग
ऋषिकेश— गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम
कटक— भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी
कानपुर— 24/55, बिरहाना रोड
कोयम्बटूर— गीताप्रेस मेंशन, 8/1 एम, रेसकोर्स
कोलकाता— गोबिन्दभवन; 151, महात्मा गाँधी रोड
गोरखपुर— गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस
चेन्नई— इलेक्ट्रो हाउस नं० 23, रामनाथन स्ट्रीट किल पोक
जलगाँव— 7, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास
दिल्ली— 2609, नयी सड़क
नागपुर— श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, 851, न्यू इतवारी रोड
पटना— अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने
बेंगलोर— 7/3, सेकेण्ड क्रास, लालबाग रोड
भीलवाड़ा— जी 7, आकार टावर, सी ब्लाक, गान्धीनगर
मुम्बई— 282, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)
राँची— कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर
रायपुर— मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक (छत्तीसगढ़)
वाराणसी— 59/9, नीचीबाग
सूरत— वैभव एपार्टमेन्ट, भटार रोड
हरिद्वार— सब्जीमण्डी, मोतीबाजार
हैदराबाद— 41, 4-4-1, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार

इन स्टेशन-स्टालोंपर कल्याणके ग्राहक बन सकते हैं

दिल्ली (प्लेटफार्म नं० 5-6); **नयी दिल्ली** (नं० 16); **हजरत निजामुद्दीन** [दिल्ली] (नं० 4-5); **कोटा** [राजस्थान] (नं० 1); **बीकानेर** (नं० 1); **गोरखपुर** (नं० 1); **गोण्डा** (नं० 1); **कानपुर** (नं० 1); **लखनऊ** [एन० ई० रेलवे]; **वाराणसी** (नं० 4-5); **मुगलसराय** (नं० 3-4); **हरिद्वार** (नं० 1); **पटना** (मुख्य प्रवेशद्वार); **राँची** (नं० 1); **धनबाद** (नं० 2-3); **मुजफ्फरपुर** (नं० 1); **समस्तीपुर** (नं० 2); **छपरा** (नं० 1); **सीवान** (नं० 1); **हावड़ा** (नं० 5 तथा 18 दोनोंपर); **कोलकाता** (नं० 1); **सियालदा मेन** (नं० 8); **आसनसोल** (नं० 5); **कटक** (नं० 1); **भुवनेश्वर** (नं० 1); **अहमदाबाद** (नं० 2-3); **राजकोट** (नं० 1); **जामनगर** (नं०1); **भरुच** (नं० 4-5); **वडोदरा** (नं० 4-5); **इन्दौर** (नं० 5); **जबलपुर** (नं० 6); **औरंगाबाद** [महाराष्ट्र] (नं० 1); **सिकन्दराबाद** [आं० प्र०] (नं० 1); **विजयवाड़ा** (नं० 6); **गुवाहाटी** (नं० 1); **खड़गपुर** (नं० 1-2); **रायपुर** [छत्तीसगढ़] (नं० 1); **बेंगलुरु** (नं० 1); **यशवन्तपुर** (नं० 6); **हुबली** (नं० 1-2); **श्री सत्यसाईं प्रशान्ति निलयम्** [दक्षिण-मध्य रेलवे] (नं० 1)।

फुटकर पुस्तक-दूकानें— **चूरू**-ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क, **ऋषिकेश**-मुनिकी रेती; **बेरहामपुर**-म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, के० एन० रोड, **नडियाड** (गुजरात) संतराम मन्दिर।

उपर्युक्त सभी गीताप्रेस गोरखपुरकी निजी दूकानों एवं स्टेशन-स्टालोंपर ‘कल्याण’का शुल्क जमा कराके रसीद प्राप्त की जा सकती है।

प्र० ति० २१-४-२०१६
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016